ध्यान-कक्षा

अर्थात्

'समभाव-समदृष्टि के स्कूल' की मार्गदर्शिका

सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजिस्टर्ड)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

शब्द है गुरु शरीर नहीं है।

सतयुग दर्शन वसुन्धरा

हे सतयुग दर्शन वसुन्धरा, यह सृष्टि तेरे अर्पण है।
हर ज्ञानी और अज्ञानी का, सत्य स्वरूप तूं दर्पण है।।

प्रकाशक :
सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
"वसुन्धरा" ग्राम भोपानी–लालपुर रोड फरीदाबाद–121002 (हरियाणा)
फोनः 0129 2202316, 820 ext. 504 फैक्सः 0129 2201125, 2202447
ई–मेलः info@satyugdarshantrust.org website: www.satyugdarshantrust.org

© सर्वाधिकार सुरक्षित सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
ISBN : 978-81-910671-5-6

प्रथम संस्करण
जनवरी, 2014

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार
आत्मिक-ज्ञान की विधिवत् पढ़ाई व गुढ़ाई के लिए

'ध्यान-कक्ष'
अर्थात्
'समभाव-समदृष्टि के स्कूल' में प्रवेश हेतु
मार्गदर्शिका

भूमिका

यह तो सर्व विदित ही है कि कलियुगी प्रभाव के कारण आज प्रत्येक मानव के ख़्याल की स्वच्छता, जिह्वा की स्वतंत्रता व दृष्टि की कंचनता भंग हो चुकी है। इसीलिए अधिकतर मानव नैतिक व चारित्रिक रूप से पतित हो अनीतियाँ व दुराचार कर रहे हैं। फलतः सामाजिक व्यभिचार बढ़ रहा है और परस्पर एकता, शांति व आनंद के स्थान पर आपसी द्वि-द्वेष, वैर-विरोध, छल-कपट, लड़ाई-झगड़े, कटुता व अशांति को बढ़ावा मिल रहा है। निःसंदेह ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कलाकृति मानव, जिसके पास कुदरत प्रदत्त बल भी है और बुद्धि भी, उसके साथ ऐसा घटित होना उपहास ही लगता है। यदि देखा जाए तो हकीकत में आज वैश्विक स्तर पर सम्पूर्ण मानव जाति इस विडम्बना का शिकार है। यहाँ सवाल यह उठता है कि जब सम्पूर्ण मानव जाति ही इस रोग का शिकार है तो शारीरिक-मानसिक-आत्मिक-सामाजिक व वैश्विक पतन की इस अवस्था से उसे उबारे कौन? आज न तो यह किसी शासक यानि राजा-महाराजा और न ही किसी धर्मशास्त्री यानि ऋषि-मुनि के बस की बात लगती है।

सभी की जानकारी हेतु मानव जाति की इसी दुर्भाग्यपूर्ण, दुःखद व अधम अवस्था को देखकर ही ऐसे स्थान का निर्माण आवश्यक समझा गया जहाँ से पुनः मानव को उसकी श्रेष्ठता, विद्वत्ता, गुणवत्ता, बलवत्ता, धनवत्ता, बुद्धिमत्ता व ज्ञानवत्ता का युक्तिसंगत एहसास करा, नैतिक व चारित्रिक रूप से सर्वोत्कृष्ट बनाया जा सके। इसी सन्दर्भ में वसुन्धरा परिसर में 'ध्यान-कक्ष' का निर्माण किया गया और 'समभाव-समदृष्टि की युक्ति' जो इस पतित अवस्था से मानव को उबारने का एकमात्र साधन है उस युक्ति को अपनाने के प्रति सबको जागरूक करने हेतु सतयुग दर्शन ट्रस्ट द्वारा इस ध्यान कक्ष में सर्वसम्मति से 'समभाव-समदृष्टि का स्कूल' खोलने का निर्णय लिया गया।

इस स्कूल के खुलने का मुख्य मकसद प्रत्येक मानव के ख़्याल को नित्य गुरु रूपी शब्द के साथ जोड़कर ध्यान शक्ति द्वारा उस आद् जोत से प्रकाश ग्रहण करने की क्रिया में सकुशल बनाना है ताकि उसकी बुद्धि प्रकाशित हो और वह अपने असली तत्व यानि 'आत्मा में है परमात्मा' का बोध कर सके। इस प्रकार इस स्कूल के माध्यम से हर मानव को 'विचार ईश्वर है अपना आप' व 'शब्द है गुरु शरीर नहीं' का पाठ 'समभाव-समदृष्टि' की युक्ति अनुसार पढ़ाया जाएगा ताकि हर एक के हृदय में 'सजन युग की बुनियाद' रख उसे परस्पर 'सजन-भाव के वर्त-वर्ताव द्वारा' पक्का किया जा सके।

इसी संदर्भ में समभाव-समदृष्टि के स्कूल में प्रवेश हेतु आपको इसके परिसर में निर्मित कई स्थानों से गुज़रना पड़ेगा। प्रत्येक स्थान व बनावट अपने आप में विशिष्ट अर्थ संजोए हुए है जिसका ज्ञान होने पर आपको इसकी संस्थापना के मुख्य मकसद की पूर्ण जानकारी हो जाएगी। इस मार्गदर्शिका के माध्यम से 'ध्यान-कक्ष' के परिसर में प्रत्येक स्थान व बनावट का भावार्थ उस स्थान या बनावट के चित्र सहित वर्णित किया गया है ताकि आप इसे भली-भाँति समझते हुए अपने जीवन में उतार सकें।

'ध्यान-कक्ष' अर्थात् 'समभाव-समदृष्टि के स्कूल' में आपका आना आपके व आपके परिवार के लिए कल्याणकारी हो।

सूचना

यह ध्यान-कक्ष कुछ और नहीं समभाव-समदृष्टि का स्कूल है। यह सबका सांझा है इसलिए इसका न ही कोई हकदार है और न ही यहाँ कोई बड़े-छोटे का प्रभाव है। यह तो वह कुदरती सत्यज्ञान स्रोत, श्रेष्ठता व प्रकाश का पुंज है जहाँ "सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ" के अनुसार "युवावस्था की भक्ति" जो है "समभाव-समदृष्टि की युक्ति" यानि सजन-भाव को अपनाने व वर्ताव में लाने की पढ़ाई व गुढ़ाई कराई जाती है। इससे मानव को एक तो बल की प्राप्ति होती है और दूसरा शक्ति ताकतवर हो जाती है यानि नौजवान युवावस्था आ जाती है जो एक मानव को भक्ति-शक्ति — की ताकत से उच्च बुद्धि, उच्च ख्याल वाला बनाती है। ऐसा होते ही मानव का जगत में बिखरा हुआ ख्याल सतवस्तु से जा जुड़ता है। यह होता है ख्याल का सतवस्तु में प्रवेश कर उस आद् सत्य का बोध करना, उसे धारना और यथावत् अपने मन-वचन-कर्म में उतार मानव-धर्म की मर्यादा पर अटल बने रहना। यह ऐसी अवस्था होती है जहाँ मानव के संतोष, धैर्य और सच्चाई-धर्म के चारों सवाल हल हो जाते हैं और मन में कोई संकल्प नहीं रहता। इस प्रकार उसके स्वभावों का टैम्परेचर घटता-बढ़ता नहीं यानि सदा सम रहता है, वहाँ "हाँ-मैं" मिट जाती है। ऐसा होने पर मानव ब्रह्म, जीव और जगत के खेल को भली-भाँति जान इस जगत में निर्भयता, निर्लिप्तता व तृप्ति से विचरता हुआ अपने जीवन लक्ष्य मोक्ष को सहजता से प्राप्त कर लेता है।

तो आओ इस समभाव-समदृष्टि के सबक पर अमल द्वारा हम सब श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बनने हेतु इस सार्थक व सत्यज्ञान स्रोत ध्यान-कक्ष के आगे अति श्रद्धा व विश्वास पूर्वक अपना सीस अर्पण करें और सजन-पुरुष बन एकता के प्रतीक बन जाएं।

यहाँ आकर हर मानव ऐसा ही कर पाए यह सुनिश्चित करने के लिए इस ध्यान-कक्ष में कलुकाल में प्रचलित बालअवस्था की भक्ति की युक्ति अनुसार किसी भी प्रकार का अन्य क्रियाकलाप करना वर्जित है।

सूचना

यह ध्यान-कक्ष कुछ और नहीं समभाव-समदृष्टि का स्कूल है। यह सबका साँझा है इसलिए इसका न ही कोई हकदार है और न ही यहाँ कोई बड़े-छोटे का प्रभाव है। यह तो वह कुदरती सत्यज्ञान स्रोत श्रेष्ठता व प्रकाश का पुंज है जहाँ 'सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ' के अनुसार 'युवावस्था की भक्ति' जो है 'समभाव-समदृष्टि की युक्ति' यानि सजन-भाव को अपनाने व वर्त-वर्ताव में लाने की पढ़ाई व गुढ़ाई कराई जाती है। इससे मानव को एक तो बल की प्राप्ति होती है और दूसरे शक्ति ताकतवर हो जाती है यानि नौजवान युवावस्था आ जाती है जो एक मानव को भक्ति-शक्ति की ताकत से उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल वाला बनाती है। ऐसा होते ही मानव का जगत में बिखरा हुआ ख़्याल सतवस्तु से जा जुड़ता है।

यह होता है ख़्याल का सतवस्तु में प्रवेश कर उस आद् सत्य का बोध करना, उसे धारना और यथावत् अपने मन-वचन-कर्म में उतार मानव-धर्म की मर्यादा पर अटल बने रहना। यह ऐसी अवस्था होती है जहाँ मानव के संतोष, धैर्य और सच्चाई-धर्म के चारों सवाल हल हो जाते हैं और मन में कोई संकल्प नहीं रहता। इस प्रकार उसके स्वभावों का टैम्प्रेचर घटता-बढ़ता नहीं यानि सदा सम रहता है। यहाँ "हौं-मैं" मिट जाती है। ऐसा होने पर मानव ब्रह्म, जीव और जगत के खेल को भली-भाँति जान इस जगत में निर्भयता, निर्लिप्तता व तृप्ति से विचरता हुआ अपने जीवन लक्ष्य मोक्ष को सहजता से प्राप्त कर लेता है।

तो आओ इस समभाव-समदृष्टि के सबक पर अमल द्वारा हम सब श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बनने हेतु इस सार्थक व सत्यज्ञान स्रोत ध्यान-कक्ष के आगे अति श्रद्धा व विश्वास पूर्वक अपना सीस अर्पण करें और सजन-पुरुष बन एकता के प्रतीक बन जाएँ।

यहाँ आकर हर मानव ऐसा ही कर पाए यह सुनिश्चित करने के लिए इस ध्यान-कक्ष में कलुकाल में प्रचलित बालअवस्था की भक्ति की युक्ति अनुसार किसी भी प्रकार का अन्य क्रियाकलाप करना वर्जित है।

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विवरण (स्थान)	पृष्ठ संख्या
1	वसुन्धरा का मुख्य द्वार	8
2	ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाला पहला द्वार	11
3	ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाला दूसरा द्वार	12
4	ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाला तीसरा द्वार	13
5	ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाला चौथा द्वार	14
6	ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाला पाँचवाँ द्वार	15
7	ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाला छठा द्वार	16
8	ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाला सातवाँ द्वार	17
9	ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाले सातों द्वार पार कर ध्यान-कक्ष के सामने	18
10	सातों द्वार पार कर ध्यान-कक्ष की परिसीमा पर सामने बाईं दीवार पर	20
11	सातों द्वार पार कर ध्यान-कक्ष की परिसीमा पर सामने दाहिनी दीवार पर	22
12	ध्यान-कक्ष परिसीमा की बाह्य परिक्रमा	25
13	ध्यान-कक्ष के परिक्रमा मार्ग पर स्थित 'सत्य ज्ञान यज्ञ स्थल'	26
14	विचार-बिन्दु एवं उनके अर्थ	30
15	ध्यान-कक्ष की परिसीमा के भीतर स्थित प्रथम स्तंभ–शंख	81
16	ध्यान-कक्ष की परिसीमा के भीतर स्थित द्वितीय स्तंभ–चक्र	84
17	ध्यान-कक्ष की परिसीमा के भीतर स्थित तृतीय स्तंभ–गदा	87
18	ध्यान-कक्ष की परिसीमा के भीतर स्थित चतुर्थ स्तंभ–पद्म	89
19	ध्यान-कक्ष के मुख्य द्वार पर	91
	क. शीश अर्पण	92
	ख. समभाव-समदृष्टि के स्कूल की अद्वितीय महत्ता	95
20	ध्यान-कक्ष की ओर जाते हुए रास्ते पर नीचे संसार समुद्र (वॉटर बॉडी)	99
21	संसार समुद्र व ध्यान-कक्ष भवन के भूमितल से निचले बाह्य भाग पर	103
22	संसार समुद्र व ध्यान-कक्ष भवन के भूमितल से निचले बाह्य भाग के सामने (गुलानारी रंग की महत्ता)	104

क्रमांक	विवरण (स्थान)	पृष्ठ संख्या
23	ध्यान-कक्ष भवन के बाह्य मध्य भाग में स्थित तिरंगी पट्टी	106
24	ध्यान-कक्ष भवन के बाह्य ऊपरी भाग पर स्थित आद् जोत, शंख-चक्र, गदा-पद्म व इन्द्रियाँ	108
25	ध्यान-कक्ष भवन–भूतल	111
	क. सर्गुण द्वार पर अंकित शब्द	111
	ख. सर्गुण के मध्य–शांति-शक्ति का प्रतीक चिह्न	112
	ग. प्रतीक चिह्न के चारों ओर गोलाकार से निकलते रंगों की महत्ता	113
	घ. मध्य में स्थित 'गदा' का महत्त्व	116
	ङ सर्गुण की महत्ता	120
	च सर्गुण कक्ष के अन्दर चारों ओर लिखे हुए फ़रमान	122
26	ध्यान-कक्ष भवन–भूमिगत कक्ष	126
27	ध्यान-कक्ष से निर्गुण द्वार की ओर जाती सीढ़ियों पर (एकता का प्रतीक-महत्त्व)	129
28	ध्यान-कक्ष भवन –प्रथम तल–बारादरी–निर्गुण द्वार	133
	क. निर्गुण द्वार पर अंकित शब्द	133
	ख. निर्गुण की महत्ता	134
	ग. निर्गुण कक्ष के भीतर चारों ओर लिखे संदेश	136
	घ. कक्ष के भीतर चारदीवारी पर लिखे हुए फ़रमान	144
	ङ निर्गुण कक्ष के मध्य में प्रकाशित ज्योति की महत्ता	152
	च. निर्गुण कक्ष के ऊपर मध्य में प्रकाशित सूर्य की महत्ता	155
	छ. निर्वाण	159
	ज. परमधाम	160
29.	ध्यान-कक्ष अर्थात् समभाव-समदृष्टि के स्कूल का संदेश	163
30	समभाव-समदृष्टि के स्कूल का पाठ्यक्रम	167
31	सूचना	170
32	ध्यान-कक्ष अर्थात् समभाव-समदृष्टि के स्कूल को देखने के लिए निर्धारित दिन व समय	172

शब्द है गुरु शरीर नहीं है
सतयुग दर्शन वसुन्धरा
हे सतयुग दर्शन वसुन्धरा, यह सृष्टि तेरे अर्पण है।
हर ज्ञानी और अज्ञानी का, सत्य स्वरूप तूं दर्पण है।।

स्थान : वसुन्धरा का मुख्य द्वार

आप अपनी ही पावन धरा वसुन्धरा के मुख्य द्वार तक पहुँच चुके हैं। यहाँ पर आपका हार्दिक स्वागत है। 'आओ जी, जी आयां नूं'।

इस हेतु अब नज़रें उठाकर ऊपर देखिए कि सबसे पहले क्या लिखा हुआ है-

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

इसे सात बार, अपने मन में इसका अर्थ समझते हुए, उच्चारो कि ईश्वर हमारा मित्र, प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो और वैसे ही गुण अपनाओ। अब इस अर्थ को मन में धारण करते हुए सर्वव्यापक ईश्वर के जिस शब्द द्वारा इस ब्रह्मांड की रचना हुई है, उसी शब्द को अपने जीवन का मार्गदर्शक मानो और अपने निज को इस पाँच तत्वों के नश्वर शरीर से आज़ाद रखो। अब जो आगे लिखा है **'शब्द है गुरु, शरीर नहीं है'** उसको स्वीकारो और अपने आप से कहो कि अब के बाद मैं **'ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाऊँगा'** यानि **'निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा रखूँगा'**। इस प्रकार अब मैं केवल **'गुरु ग्रन्थ, गुरु वाणी, गुरु शब्द'** अनुसार प्रबल विचार पकड़ इस जगत में शांतमय विचरूँगा।

ध्यान दो यह मुख्य द्वार सम्पूर्ण मानव जाति का यह कह कर आवाहन कर रहा है कि इस पावन धरा वसुन्धरा पर आओ और अपने ज्ञान-अज्ञान की तुलना करके अपने मनुष्यत्व के सत्य को परखो। फिर इसके प्रति अपने आप में जो भी विकृतियाँ पाओ उन्हें 'समभाव-समदृष्टि के स्कूल' से पढ़-गुढ़ कर सुधार लो। इस प्रकार मानव-धर्म अनुकूल ढल समुचित रूप से निर्विकारी हो हर कष्ट-क्लेश से बच जाओ और निष्कामता व निर्भयता से इस जगत में विचरते हुए धर्म अनुसार परोपकार कमाओ।

निःसंदेह कलियुगी भाव-स्वभावों से छुटकारा पा सतयुग में प्रवेश पाने हेतु इसको अपनी नितांत आवश्यकता मानते हुए अब आप ख़ुद ही कह उठोगे कि-

'हे सतयुग दर्शन वसुन्धरा, यह सृष्टि तेरे अर्पण है।
हर ज्ञानी और अज्ञानी का सत्य स्वरूप तूं दर्पण है।।'

आओ इस दर्पण में अपने यथार्थ सत्य स्वरूप का दर्शन करो। जानो कि कहीं आपके मन ने संतोष और धैर्य के स्थान पर असंतोष और अधीरता अपनाकर आपके ख़्याल और ध्यान को अस्थिर तो नहीं कर दिया। कहीं आप सच्चाई और धर्म के रास्ते से भटककर अपना नाता छल व कपट के साथ तो नहीं जोड़ बैठे। अगर ऐसा हो चुका है तो जानो कि आपके हृदय में व्याप्त समभाव के आगे द्वि-द्वेष के बादल इस तरह से छा चुके हैं कि समभाव अपने स्रोत, सम रूपी ईश्वर समेत आपकी दृष्टि व बुद्धि की पहुँच से बाहर हो गया है। अगर यह सत्य समझ में आ रहा हो तो जान लो कि आपके लिए इस जगत में निष्कामता से विचरते हुए परोपकारी वृत्ति को सदैव बनाए रखने का पराक्रम दिखाना असंभव हो चुका है। अगर ऐसा है तो इस सत्य को मान लो कि आप अपने अंतर्निहित बल, बुद्धि व ज्ञान रूपी शक्ति की यथार्थता से अपरिचित हो, आधि-व्याधि से ग्रस्त हो किसी कमज़ोर व नादान इंसान की तरह मर-मर कर जीवन जी रहे हो। ध्यान दो अपनी परख के उपरांत अगर आप अपने मन को अवचेतन व अचेतन अवस्था में पा रहे हो तो उसे पुनः चेतन अवस्था में लाने का यत्न करना उचित समझो।

चैतन्य अवस्था के बोध द्वारा अपने यथार्थ बल और बुद्धि का एहसास कराने हेतु मुख्य द्वार के बाद क्रमशः संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म, सम, निष्काम व परोपकार के प्रतीक इन सात द्वारों का निर्माण इसी उद्देश्य से किया गया है। ये सातों द्वार हर मानव के लिए संतोष-धैर्य धारण कर सच्चाई-धर्म के मार्ग पर निर्भयता से चलते हुए समवृत्ति द्वारा निष्काम-भाव से परोपकार करने के प्रतीक हैं। यहाँ समवृत्ति से तात्पर्य सबके साथ समान रूप तथा समान भाव से होने, रहने या चलने वाले से है। इस प्रकार ये सातों द्वार एक मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को दर्शाते हैं।

स्थान : ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाला पहला द्वार

संतोष- किसी प्रकार की कामना, आसक्ति या इच्छा न रखते हुए कर्म करना व उसके फल की चिंता, अपेक्षा, परवाह या शिकायत न करते हुए सदा तृप्त व प्रसन्नचित्त रहना।

स्थान : ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाला दूसरा द्वार

धैर्य- चित्त को स्थिर रखते हुए सदा निर्विकार बने रहने हेतु उसमें किसी कारण उद्वेग यानि व्याकुलता का भाव न उत्पन्न होने देना।

स्थान : ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाला तीसरा द्वार

सच्चाई- उत्तम आचरण द्वारा यथार्थता से यानि जैसा है वैसा जीवन जीना।

स्थान : ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाला चौथा द्वार

धर्म- मानव धर्म के अनुरूप स्वभाव अपनाकर यह सुनिश्चित करना कि वह वृत्ति मुझमें सदा रहे। मुझसे कभी अलग न हो। इसके प्रति सचेत हो अपने कर्त्तव्य का पालन करना।

स्थान : ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाला पाँचवाँ द्वार

सम- अपने चित्त की अवस्था या वृत्ति सब जगह समान रखते हुए आचरण और व्यवहार करना।

स्थान : ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाला छठा द्वार

निष्काम- चित्त को शुद्ध रखने के लिए हर काम बिना किसी कामना अथवा इच्छा के करना ताकि मुक्ति प्राप्त हो।

स्थान : ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाला सातवाँ द्वार

परोपकार-अपना प्रत्येक कार्य सर्वहित के सिद्धान्त के अनुरूप करते हुए परमार्थ हो जाना।

स्थान : ध्यान-कक्ष की ओर जाने वाले सातों द्वार पार कर ध्यान-कक्ष के सामने

अब जब इन सात द्वारों को पार कर समभाव-समदृष्टि के स्कूल में प्रवेश करने वाले हो तो ऐसा करने से पहले संकल्प लो कि -

मैं सज्जनता का प्रतीक सजन-पुरुष बनने के लिए अपने मन में किसी प्रकार की कामना, आसक्ति या इच्छा न रखते हुए कर्म करूँगा व उसके फल की चिंता, अपेक्षा, परवाह या शिकायत न करते हुए सदा तृप्त व प्रसन्नचित्त बना रहूँगा। इसके साथ-साथ चित्त को स्थिर व शुद्ध रखते हुए मैं सदा निर्विकार बने रहने हेतु उसमें किसी कारण उद्वेग यानि व्याकुलता का भाव उत्पन्न नहीं होने दूँगा। मुझे अपने चित्त की अवस्था या वृत्ति सब जगह समान रखते हुए अपने जीवनकाल में आचरण या व्यवहार करना होगा। इस प्रकार उत्तम आचरण द्वारा यथार्थता से जीवन जीना सुनिश्चित करूँगा ताकि मानव धर्म की मर्यादा अनुसार मेरा मन-वचन-कर्म सदैव सधा रहे। अपनी उत्कृष्टता सिद्ध करने हेतु मैं 'समभाव-समदृष्टि की युक्ति' अनुसार सजन-भाव को अपना मुख्य गुण समझकर इस तरह से अपनी प्रकृति में यानि स्वभाव में उताऱूँगा कि वह फिर कभी भी मुझसे अलग न हो। तभी तो मैं अपने जीवन में जो कुछ भी करना होगा सर्वहित के सिद्धान्त अनुरूप कर पाऊँगा और सदाचार से पूर्ण, धर्मज्ञ व एक नेक इंसान कहलाकर यश-कीर्ति को प्राप्त कर पाऊँगा ।

इस क्रिया में सफलता प्राप्ति के लिए अर्थात् अपने मन-वचन-कर्म की शुद्धता, विचारशक्ति की प्रबलता व अपने ख़्याल को हर फुरने से आज़ाद रखने हेतु मैं अपने मन को सदा सम में लीन रखूँगा ताकि मेरे चित्त की एकाग्रता कभी भी भंग न हो और मैं 'एक निगाह एक दृष्टि' यानि उच्च बुद्धि-उच्च ख़्याल हो जीव, जगत और ब्रह्म के खेल को सत्यता से जान सकूँ। फलतः आत्मज्ञानी व ब्रह्मज्ञानी के पद को प्राप्तकर इस तरह से स्वार्थपरता से उबर परमार्थ हो जाऊँ कि अपने कर्त्तव्यों का प्रसन्नचित्तता से पालन करता हुआ इसी जन्म में जीवन-लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करूँ।

Symbol of Oneness
ध्यान कक्ष

स्थान : सातों द्वार पार कर ध्यान-कक्ष की परिसीमा पर सामने बाईं दीवार पर

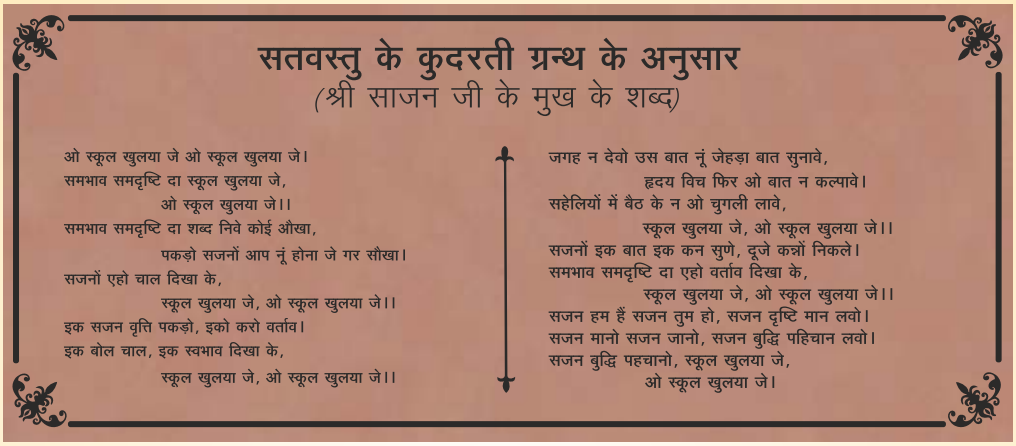

अब यह जानने की कोशिश करो कि जो चाहा है वह कैसे प्राप्त होगा? इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए साजन परमेश्वर ने आपके लिए इस वसुन्धरा परिसर में जो प्रबन्ध करवाया है, उसे पहले सामने बाईं दीवार पर देखो और लिखित शब्दों को पढ़ो व अर्थसहित समझो कि वे क्या कह रहे हैं- .

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार
(श्री साजन जी के मुख के शब्द)
ओ स्कूल खुलया जे ओ स्कूल खुलया जे।
समभाव समदृष्टि दा स्कूल खुलया जे, ओ स्कूल खुलया जे।।
समभाव समदृष्टि दा शब्द निवे कोई औखा,
पकड़ो सजनों आप नूं होना जे गर सौखा।
सजनों एहो चाल दिखा के, स्कूल खुलया जे, ओ स्कूल खुलया जे।।
इक सजन वृत्ति पकड़ो, इको करो वर्ताव।
इक बोलचाल, इक स्वभाव दिखाके,
स्कूल खुलया जे, ओ स्कूल खुलया जे।।

जगह न देवो उस बात नूं जेहड़ा बात सुनावे,
हृदय विच फिर ओ बात न कल्पावे।
सहेलियों में बैठ के न ओ चुगली लावे,
स्कूल खुलया जे, ओ स्कूल खुलया जे।।
सजनों इक बात इक कन सुणे, दूजे कन्नों निकले।
समभाव समदृष्टि दा एहो वर्ताव दिखा के, स्कूल खुलया जे,
ओ स्कूल खुलया जे।।
सजन हम हैं सजन तुम हो, सजन दृष्टि मान लवो।
सजन मानो सजन जानो, सजन बुद्धि पहिचान लवो।
सजन बुद्धि पहचानो, स्कूल खुलया जे, ओ स्कूल खुलया जे।।

आपकी जानकारी के लिए हम यह बताना चाहते हैं कि इस कीर्तन का भावार्थ इस प्रकार है-

'समभाव-समदृष्टि का स्कूल' खुलना अपने आप में हर मानव के लिए उसके हृदय में मानव-धर्म सत्यता से स्थापित करने हेतु एक विशेष ईश्वरीय सौगात है व परम सौभाग्य का विषय है। अपना भाग्य जगाने के लिए निःसंकोच इस स्कूल में दाख़िल हो जाओ। 'समभाव-समदृष्टि' के शब्द को अर्थ सहित यानि उसका अभिप्राय समझ इस विश्वास के साथ अपने हृदय व ध्यान दृष्टि में कर अपने मन-वचन-कर्म में उतारना कोई कठिन कार्य नहीं है। सजन-वृत्ति पकड़ने हेतु यह क्रिया कदम-कदम पर विचार करते हुए दक्षता और धीरता से करनी है। फिर उस वृत्ति को यथार्थता व कुशलता से प्रयोग में लाते हुए इस जगत में विचरना सुनिश्चित करना है। इस क्रिया को अपनी उपासना का विधान समझ कर अपने ख़्याल को इस तरह से नित्य निज स्वरूप में एकरस ध्यान स्थित रखना है कि यह क्रिया आपके स्वभाव के अंतर्गत हो जाए। इसके उपरांत अपनी वृत्ति-स्मृति व बुद्धि को सदैव निर्मल रखने हेतु आपको सावधान होना है कि यह कारण जगत इस उपासना में विघ्न डाल आपके ख़्याल को उस विधान में निश्चल बने रहने से भटकाकर जगत में अटका न

दे। इसके लिए आपको याद रखना है कि जो कोई भी बात सुनावे उस बात को अपने हृदय में जगह नहीं देनी है। ऐसा इसलिए कह रहे हैं ताकि वह बात हृदय में किसी प्रकार की कल्पना उत्पन्न कर मन-वचन-कर्म को कुप्रभावित न कर दे और इस तरह आप आपस में बैठकर निंदा-चुगली करने पर मजबूर न हो जाओ। फिर भी 'समभाव-समदृष्टि की युक्ति' के विपरीत स्वाभाविक रूप में ढलने से बचे रहने हेतु अगर मजबूरी में किसी की बात सुननी भी पड़े तो उसे एक कान से सुनना है और दूसरे कान से बाहर निकाल देना है यानि उसे हृदय में ठहरने नहीं देना है। यह होगा पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ सजन-भाव अपनी दृष्टि में कर अपने अन्दर निहित सजनता अनुरूप भाव-स्वभाव अपने आचार, विचार व व्यवहार द्वारा प्रकट होने देना और उनके वर्त-वर्ताव के दौरान अपने में व सर्व-सर्व में अपना सजन स्वरूप निहारना। फिर उसी असलियत स्वरूप का सब में दर्शन करने के योग्य बन, अपना व सबका सजन हो जाना। अगर ऐसा सुनिश्चित करने में सफल हो जाते हो तो इसका अर्थ होगा सजन बुद्धि पहचान, समभाव-समदृष्टि के शब्द को आत्मसात् कर सबसे बुद्धिमान हो जाना। यहाँ याद रखो कि निष्काम भाव से ऐसा महान पराक्रम दिखाना आपका परम कर्त्तव्य है।

स्थान : सातों द्वार पार कर ध्यान-कक्ष की परिसीमा पर सामने दाहिनी दीवार पर

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार

(सजन दयालु श्री रामचंद्र जी के मुख के शब्द)

समभाव समदृष्टि, समभाव समदृष्टि।
सजन जेहड़ा इक निगाह इक दृष्टि देखे जगत जहान ओजी ओजी।।
कर लैंदा ओ मेरे साजना कर लैंदा ओ मेरे साजना,
कर लैंदा आत्मिक ज्ञान ओजी ओजी।।
समभाव समदृष्टि विच जेहड़ा पक्का हो जावे इंसान जी,
पक्का हो जावे इंसान जी,
बिन औखियाईयों बिन खेचलों,
जेहड़ी गुज़र गई जेहड़ी इस वक्त जेहड़ी आने वाली
ओ मेरे साजना हो जांदा उस नूं ज्ञान ओजी ओजी।।
जेहड़ा समभाव समदृष्टि विच्चों सजन फ़र्स्ट निकलदा महान जी,
ओ फ़र्स्ट निकलदा महान जी,
बिन सूरजों ओ रौशनी पकड़े,
ओ मेरे साजना पकड़दा है ओ महान ओजी ओजी ।।
समभाव समदृष्टि वल्लों सजन जेहड़ा कर लैंदा पहचान जी,
ओ कर लैंदा पहचान जी,
पहुँच गया ओ परमधाम, ओ मेरे साजना
रौशन कर लैंदा नाम ओजी ओजी।।
समभाव समदृष्टि जैंदी बुद्धि लवे पहचान जी ओ बुद्धि लवे पहचान जी
ओथे जन्म मरण रोग सोग कहाँ, खुशी ग़मी ग़रीबी अमीरी कहाँ,
अमीरों का है ओ अमीर ओ मेरे साजना,
बेअन्त बिन सूरजों जगे ओ महान ओजी ओजी।।

अब आगे वे ईश्वर समभाव-समदृष्टि के सबक के बारे में जो कह रहे हैं वह दाहिनी ओर दीवार पर लिखा हुआ है, उसे भी ध्यान से पढ़ो व समझो-

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार -

सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी के मुख के शब्द

समभाव समदृष्टि, समभाव समदृष्टि ।
सजन जेहड़ा इक निगाह इक दृष्टि देखे जगत जहान ओजी ओजी ।।
कर लैंदा ओ मेरे साजना कर लैंदा ओ मेरे साजना।
कर लैंदा आत्मिक ज्ञान ओजी ओजी ।।
समभाव समदृष्टि विच जेहड़ा पक्का हो जावे इन्सान जी,
पक्का हो जावे इन्सान जी,
बिन औखियाईयों बिन खेचलों,
जेहड़ी गुज़र गई जेहड़ी इस वक्त जेहड़ी आने वाली
ओ मेरे साजना हो जांदा उस नूं ज्ञान ओजी ओजी ।।
जेहड़ा समभाव समदृष्टि विच्चों सजन फ़र्स्ट निकलदा महान जी,
ओ फ़र्स्ट निकलदा महान जी,
बिन सूरजों ओ रौशनी पकड़े,
ओ मेरे साजना पकड़दा है ओ महान ओजी ओजी ।।
समभाव समदृष्टि वल्लों सजन जेहड़ा कर लैंदा पहचान जी,
ओ कर लैंदा पहचान जी,
पहुँच गया ओ परमधाम, ओ मेरे साजना
रौशन कर लैंदा नाम ओजी ओजी ।।
समभाव समदृष्टि जैंदी बुद्धि लवे पहचान जी, ओ बुद्धि लवे पहचान जी
ओथे जन्म मरण रोग सोग कहाँ, खुशी ग़मी ग़रीबी अमीरी कहाँ

अमीरों का है ओ अमीर ओ मेरे साजना,

बेअन्त बिन सूरजों जगे ओ महान ओजी ओजी ।।

अब इस कीर्तन का भावार्थ जानो-

ईश्वर कह रहे हैं कि समभाव जो एक निगाह एक दृष्टि जनचर-बनचर और जड़-चेतन में एक दर्शन के रूप में देखनी होती है वह समदृष्टा का विशेष गुण होता है। तभी तो ऐसा गुणी समदृष्टा अपने मन मन्दिर प्रकाश को सारे जग अन्दर देखने में सफलता प्राप्त करता है और आत्मज्ञानी कहलाता है। वे आगे कहते हैं कि 'समभाव-समदृष्टि के सबक' पर जो इंसान मज़बूत हो जाता है, उस त्रिकालदर्शी को बिन औखियाईयों, बिन खेचलों जो गुज़र गई, जो इस वक्त और जो आने वाली बात है उसका अपने आप ज्ञान हो जाता है। फिर जो महान इस ज्ञान के वर्त-वर्ताव द्वारा 'समभाव-समदृष्टि' पर स्थिर रह कर फ़र्स्ट का नतीजा दिखाता है वह पराक्रमी बिन सूरजों उस निराकार सूरजों के सूरज के प्रकाश के तेज प्रताप के प्रभाव से अपने अंतर्निहित दोषों से छुटकारा पाकर निर्विकार अवस्था प्राप्त कर लेता है। यह होता है संकल्प पर पूरी तरह से फ़तह पा अपनी शुद्ध कमाई के मुताबिक दिव्य दृष्टि लेकर आवागमन के चक्कर से बच जाना। इस हेतु 'समभाव-समदृष्टि' के सबक अनुसार कार्यव्यवहार करते हुए जो निगाह अपने असलियत स्वरूप में जोड़े रख, अफुर अवस्था धारण करने की योग्यता की परख पर खरा उतर, निज को पहचान लेता है वह परमधाम पहुँचकर अपना नाम रोशन कर लेता है। यह होता है 'समभाव-समदृष्टि' के सबक को बुद्धि द्वारा पहचान लेना और उच्च बुद्धि उच्च ख़्याल हो जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-ग़मी, ग़रीबी-अमीरी से बच अमीरों का अमीर हो रूप, रंग, रेखा से बाहर हो जाना यानि ज्योति स्वरूप पारब्रह्म परमेश्वर कहला बेअन्त व महान पद को प्राप्त होना।

ध्यान-कक्ष परिसर की बाह्य परिक्रमा

ध्यान-कक्ष की परिसीमा पर अंकित इन दोनों कीर्तनों के अर्थ जानने के पश्चात् अब आपने ध्यान-कक्ष परिसर की बाह्य परिक्रमा करते हुए चारों ओर लिखे

विचार-बिन्दुओं को समझते हुए पढ़ना है। ये अर्थसहित विचार-बिन्दु 'सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ' में वर्णित आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई का सार रूप हैं। यहाँ आपको बता दें कि कुछ विचार-बिन्दुओं को पढ़ने के पश्चात् इस परिक्रमा के दौरान मार्ग पर स्थित 'सत्य ज्ञान यज्ञ स्थल' भी आएगा और फिर विचार-बिन्दु आने आरम्भ हो जाएँगे। आपकी सुविधा के लिए इन विचार-बिन्दुओं का संक्षिप्त अर्थ एक साथ 'सत्य ज्ञान यज्ञ स्थल' के विषय में बताने के बाद स्पष्ट किया गया है।

सत्य ज्ञान यज्ञ स्थल
दिनांक 21-10-1996
विजयादशमी

स्थान : ध्यान-कक्ष के परिक्रमा मार्ग पर स्थित 'सत्य ज्ञान यज्ञ स्थल'

इन विचार-बिन्दुओं को पढ़ते-पढ़ते आप पहुँच गए हैं 'सत्य ज्ञान यज्ञ स्थल' पर जहाँ लिखा है-

ओ३म् विच विशेष हूँ, ओ३म् तूं निर्लेप हूँ

अमर है मेरी आत्मा

न जन्म में है
न मरण में है

न रोग में है

न सोग में है

न ख़ुशी में है

न ग़मी में है

न मान में है

न अपमान में है

न अमीरी में है

न ग़रीबी में है

वह अमीरों का भी अमीर है।

जान लो यही आपका यथार्थ है। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार हमें इस यथार्थ का इस प्रकार बोध करना है।

ध्यान दो - 'इन दस इन्द्रियों के दरमियान में जिसकी रोशनी है, जो हर जगह मौजूद है वह सच्चिदानन्द भगवान आप ही हो। संसार में सब कामों में लीन

होते हुए भी जो निष्कामी है वही ब्रह्म है। आप वह वस्तु हैं जिसे हथियार काट नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती, पवन उड़ा नहीं सकती, पानी बहा या गला नहीं सकता। आप अजर-अमर हैं। यह आत्मा तो इस तरह शरीर रूपी चोले को बदलती रहती है जैसे पुराना वस्त्र उतारकर नया पहन लिया जाता है। शरीर ही केवल नाशवान है लेकिन वह असलियत सदा अजर अमर है। शरीर एक घड़े की तरह है लेकिन वह असलियत सूरज की तरह है। यह शरीर रूपी घड़ा तो टूट जाता है परन्तु वह सूरज सदा अटल है। आप भी सदा अटल रहने वाले सूरज हैं।

इस संसार में न कोई गुरु है न कोई चेला है। आप ही गुरु हैं आप ही चेला हैं क्योंकि गुरु भी बन्धन है और चेला भी बन्धन है परन्तु आप इस बन्धन से रहित हैं। इसलिये आप कर्म करने वाले सच्चे योगी बनें, निष्काम कर्म करें। अपने ज्ञान की अग्नि में अज्ञानता का नाश करें क्योंकि जीवन हमेशा उसी का सुखी हो सकता है जिसको प्रतिदिन सत्संग मिलता हो। जिसके आचार-विचार उच्च हों, जिसके मन के भाव गूढ़ हों और जिसकी उस सच्चिदानन्द प्रभु के चरणों में प्रीत हो। जो मन, वचन, कर्म द्वारा सब कामों को सच्चाई और निष्काम भावना से करता हो वरना मनुष्य का तन-मन सदा व्याकुल रहता है।

आप वह शक्ति हैं जिसके लिये ख़ुशी ग़मी एक समान हैं। इसलिये आप सब हालातों में हृदय, दिमाग़ और शरीर को ठीक रखो। अपने स्वरूप और आत्मा को इन चीज़ों से निर्लेप अर्थात् अलग समझो क्योंकि आपका वही स्वरूप और आत्मा सदा अजर-अमर है।

हर रोज़ एकान्त में बैठकर अपना आत्मनिरीक्षण कर सबके प्रति सजन-भाव सुदृढ़ रखते हुए सुनिश्चित करो कि मुझे किसी से वैर और प्रीति न हो क्योंकि मैं अनन्त हूँ, ब्रह्म हूँ और अखण्ड हूँ। मेरा शरीर सबसे अलग रहे लेकिन मेरे प्राण सबमें मिले हुए हों। मैं सबको अपने में मिला लूं और मेरा नाम सबमें समाया हुआ हो। मेरी हर बात को भूलने की आदत हो और मेरी भूल में भी

प्रसन्नता हो। मेरे सामने सब चीजें पड़ी हों परन्तु मुझे उनसे कोई प्रीति न हो। मेरा असली मकसद बड़ा महान हो। मान और अपमान मेरे लिये एक समान हों। मेरे दिल में ऊँच-नीच का कोई भेद भाव न हो। प्रसन्नता और शोक मेरे लिये एक समान हों। इस तरह मुझे नित्य प्रति प्रसन्नता मिलती रहे।

अब जब आपको अपने इस यथार्थ का बोध हो गया है तो आपको आत्मभाव से आत्मरूप होकर इस जगत में विचरना होगा। इस हेतु आज तक अपनाए अपने ज्ञान-अज्ञान की इस यज्ञ-स्थल में आहुति डाल दो और तत्परता से सत्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए चारों ओर लिखे सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के विचार-बिन्दुओं यानि जानने योग्य विचारों को अर्थों सहित समझो और उसे अपने मन में सोचकर तद्नुरूप अपने ख़्याल को इस तरह से ढालो कि वह आपकी भावना का रूप ले ले। यह होगा उस परमेश्वर का, आपकी भावना में व्याप्त हो, आपके ख़्याल को सर्वव्यापकता का भान करा सजन-भाव के वर्त-वर्ताव में दक्ष करना।

विचार-बिन्दु एवं उनके अर्थ

1

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ
ए ग्रन्थ कुदरती सतवस्तु दा आ रिहा।
तूं मैं किसे दा सवाल नहीं।।
ए ग्रन्थ सब दा है ओ साँझा।
ऐथे वड छोट दा कोई प्रभाव नहीं।।

'सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ' कुदरती रचना है। इसका रचियता व मालिक कोई और नहीं केवल वही ईश्वरीय शक्ति है जो हर प्राणी के हृदय में स्थित है इसलिए यह सम्पूर्ण मानव जाति की सम रूप से मलकियत है। तभी तो कहा गया है कि यह ग्रन्थ है जे ओ सबका साँझा और यहाँ वड-छोट का कोई प्रभाव नहीं यानि कोई भी इस ग्रन्थ को लेकर किसी पर भी अपना प्रभुत्व नहीं जमा सकता। इस कथन के अनुसार मुझे भी अपने मन को 'तूं-मैं' व 'वड-छोट' के प्रभाव से मुक्त रखना है।

2

सतवस्तु दी सजनों चाल चलो।
सतवस्तु दे वचन इस्तेमाल करो।।
सतवस्तु दे असूलां नू फड़ो सजनो।
सत् सत् वचनां नाल प्यार करो।।

सतवस्तु के विधान व सिद्धान्त अनुसार कहे हुए कथनों को अपने आचरण व व्यवहार में यथारूप उतारने हेतु इस तरह से अपने ख़्याल में संजोना है कि वह मेरी धारणा से कभी अलग न हो पाए यानि मुझे उनका इस्तेमाल करना अच्छा लगने लगे।

3

विचार ईश्वर आप नूं मान।
अवविचार ईश्वर इक जान ।।
विचार इक अपना आप ही मान ।
अवविचार कुल दुनियां जान ।।

प्रबल विचार अपनाने हेतु 'विचार ईश्वर आप नूं मान' के सत्य को स्वीकारते हुए अपनी आत्मा में परमात्मा (स्वयं ही अपनी सुरत के शब्द रूपी परमेश्वर होने) के तथ्य को ध्यान से धारणा में लाना है तथा अपने भाव व भावना में उतारना है ताकि मेरा स्वभाव किसी भी कारण से सजनता के विपरीत न ढल सके। अन्यथा इस सत्य से अनभिज्ञ हो ईश्वर को अलग मानकर अनुमानित ढंग से उससे परिचय स्थापित करने हेतु ज्ञान प्राप्त करने की क्रिया में उलझना, अपनी ही सुरत के प्रति अत्याचार व अन्याय होगा।

इससे सत् और असत् पर विचार करने वाली विवेकशक्ति यानि जिससे भले-बुरे का ठीक और स्पष्ट ज्ञान होता है वह कमज़ोर पड़ जाएगी। फलस्वरूप बुद्धि सत्य ज्ञान प्राप्त करने में अक्षम हो जाएगी। इसलिए सर्व अपना आप मान, ख़्याल को अपने इष्ट मित्र के साथ जोड़े रखना ही उचित व सार्थक है।

अगर इस विचार से भटक कर मेरा ख़्याल कुल दुनियां का ज्ञान प्राप्त करने की होड़ में लग गया तो समस्त संसार के लोभ व जगत के प्रपंच उसे अपने जाल में इस तरह से फँसा लेंगे कि मैं किसी तरह से भी अपने भाव, भावना व स्वभाव को उस प्रकार के तंत्र के अनुसार प्रकृति में ढलने से बचा नहीं पाऊँगा। यह होगा विचारहीनता द्वारा अत्याचार व अन्याय का रास्ता अपनाना जो मुझे कदापि स्वीकार नहीं।

4

विचार करो है ईश्वर अपना आप ।
अवविचार ईश्वर है इक साथ।।
ईश्वर है अपना आप प्रकाश ।
ईश्वर है जे अजपा जाप।।

सुदृढ़ता से अपने ख़्याल को निज ज्योति स्वरूप प्रकाश में स्थित रख मुझे 'ईश्वर है अपना आप प्रकाश, ईश्वर है जे अजपा जाप' के सत्य को धारण करना है ताकि वह दृष्टिगोचर हो मेरे हृदय को इस तरह से प्रकाशित कर दे कि जीव, जगत व ब्रह्म का यह रहस्यमय खेल मुझे पूर्णतः स्पष्ट हो जाए और मुझे नाना प्रकार के जप-तप-संयम-भजन-बन्दगी-कर्मकांड आदि करने के कष्टों से छुटकारा मिल जाए।

5

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है।
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ।
यानि निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

नित्य शब्द में ही अर्थ सहित पूर्ण मनोरथ व उसकी सिद्धि हेतु उपकारी गुणवत्ता निहित होती है। परन्तु आज के अज्ञानमय समय काल में मिथ्या शब्दों के प्रचलन को ध्यान में रखते हुए, हर शब्द के सही विवेचन द्वारा विद्या के रूप में जीवन का परम पुरुषार्थ सिद्ध करने के लिए उसे मानव द्वारा विचारपूर्वक निर्णय कर प्राप्त किया जा सकता है। तभी तो कहा है कि विद्या प्राप्त करने में

सक्षम शरीर विद्या प्राप्ति उपरांत उपदेष्टा तो हो सकता है पर गुरु नहीं। इसलिए शरीर द्वारा गुरु रूप व्यवहार अपनाना निषिद्ध है अर्थात् मुझे 'ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाना है' यानि 'निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ानी है'।

6

शब्द गुरु जो जानियो,
शब्द गुरु करो प्रवान।
शब्द गुरु है मूल मन्त्र,
शब्द गुरु है महान।।

मूलमंत्र ओ३म् नित्य शब्द बड़ा महान व विशाल है। यही हकीकत में सत्य ज्ञान प्राप्त करने का मुख्य स्रोत है। अतः इसी मूलमंत्र ओ३म् नित्य शब्द ब्रह्म सत्ता को अपना गुरु व प्रिय मान मुझे इसी के प्रति अपने हृदय में श्रद्धा व आदर भाव प्रगट करना है, किसी शरीर रूपी अभिमानी नश्वर गुरु के प्रति नहीं।

चूँकि इसी मूलमंत्र से प्राप्त ज्ञान द्वारा ही उस ब्रह्म और इस ब्रह्मांड का हर रहस्य जाना जा सकता है इसलिए अब मेरे व सबके लिए इसी शब्द गुरु को प्रवान कर अपने विचार, आचार व व्यवहार को उसी सत्य-ज्ञान की मर्यादा में सदैव साधे रखना ही हितकर है। मुझे समझ आ गई है कि ऐसी धारणा द्वारा ही मैं सजन-भाव और गृहस्थ धर्म के वचनों पर परिपक्वता से खड़ा होकर इस जगत में अपना फ़र्ज़-अदा हँसकर निभा सकता हूँ।

7

जिह्वा स्वतन्त्र, संकल्प स्वच्छ, दृष्टि कंचन
विचार शब्द द्वारा असलियत स्वरूप की पहचान
व परोपकार वृत्ति प्राप्ति हेतु
सजन भाव अपनाओ, मृतलोक पर फ़तह पाओ।

जिस जिह्वा द्वारा रसों का आस्वादन और शब्दों का उच्चारण होता है, उसे संसारी नियम आदि के बंधन से पृथक रखना है ताकि वह सात्विक आहार व सार्थक शब्दोच्चारण हेतु स्वेच्छा से अपने आप को स्वाधीन रख पाए। इसके अतिरिक्त मुझे अपनी विचारशक्ति की निर्मलता साधे रख प्रत्येक काम को दृढ़ता से करने का निश्चय लेना है ताकि मेरा हर कर्म सुकर्म कहलाए। यह होगी संकल्प की स्वच्छता या निष्कपटता। यही नहीं मुझे अपनी अवलोकन शक्ति की वृत्ति भी कंचन रखनी है ताकि वह किसी भी हालत में रोगग्रस्त हो सत्य-असत्य की पहचान न खो बैठे। तभी 'मैं' विचार शब्द द्वारा अपने असलियत रूप की पहचान व परोपकार वृत्ति अपनाने हेतु सजन-भाव अपना पाऊँगा। यह होगा मृतलोक पर फ़तह पाना।

8

सजन पुरुष मन, वचन, कर्म द्वारा
सच्चाई-धर्म पर अटल रह
भक्ति-शक्ति से गृहस्थाश्रम ठीक निभाते हुए
यश-कीर्ति पर फ़रक नहीं पड़ने देता।

केवल सजन-पुरुष यानि उचित व्यवहार करने वाला ही मन-वचन-कर्म द्वारा सच्चाई-धर्म पर अटल रह व भक्ति-शक्ति से गृहस्थ-आश्रम ठीक निभाते हुए निष्कलंक रह सकता है और यश-कीर्ति की प्राप्ति कर सकता है।

9

हे इन्सान-
जिह्वा सजन ख्याल सजन।
सजन नज़रों में पहचान।।
हम हैं सजन तुम हो सजन।
सजनो सजन सजन ही मान।।

इंसानियत में ढले रहने हेतु अपनी जिह्वा द्वारा सबके साथ अच्छा, प्रिय तथा उचित व्यवहार करने वाला भला आदमी बनना है। इस हेतु मेरे लिए अपने ख़्याल व भाव में सजन-भाव अपनाना महत्त्वपूर्ण है। मुझे निगाह द्वारा ध्यान से इस भाव को परखकर इस तरह से अपनी दृष्टि में उतारना है कि मेरे अंदर से 'तूं-मैं' का सवाल ही समाप्त हो जाए। यह होगा एक निगाह एक दृष्टि हो सर्व एकात्मा का दर्शन करना।

10

सजन हम हैं सजन तुम हो।
सजन दृष्टि मान लवो।
सजन मानो सजन जानो।
सजन बुद्धि पहिचान लवो।।

हम सब समान रूप से सजन हैं और हमें एक दूसरे को उसी आदर-सत्कार की नज़र से देखना है। फिर इसी प्रवृत्ति में ढल हमें अपने गुण-दोष समझते हुए सजन बुद्धि की पहचान करनी है।

11

सजन भाव अपनाने हेतु आवश्यक-
जिह्वा गाली गलूचे न कढ़ ओय।
सब नूं सजन भाव तूं सड ओय।।
जिह्वा सजन सजन सड ओय।
निंदया चुगली करनो बच ओय।।

सजन-भाव अपनाने के लिए जिह्वा से गाली-गलूचे नहीं निकालने। इसके स्थान पर मुझे सजन-भाव को अपनी प्रकृति में ढाल सबको निज जैसा समझ उसी भाव से ही उनसे बातचीत करनी है। यह होगा परस्पर निंदा-चुगली करने के स्वभाव से बचे रहना।

12

संकल्प लो-
1. मन, वचन, कर्म द्वारा सजन-भाव प्रयोग करने हेतु।
2. सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चलने हेतु।
3. शरीर व रिहायशी मकान को साफ़ रखने हेतु।
4. हैसियत अनुसार कपड़ा पहनने व खुराक खाने हेतु।

मन-वचन-कर्म द्वारा सजन-भाव का प्रयोग कर सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चलने, शरीर व रिहायशी मकान को साफ़ रखने व हैसियत अनुसार कपड़ा पहनने व खुराक खाने हेतु दृढ़ निश्चय लेना है।

13

सृष्टि का सत्य-
जीव जन्तु प्रभु जी तेरे उपजाये,
फुरने दे स्त्री पुरुष नज़र आये।
सब स्त्रियाँ इक पुरुष हर थाईं,
बेअंत बेअंत बेअंत गुसाईं।।

उस ईश्वर के पैदा किए हुए सभी जीव-जन्तु चाहे फुरने के अनुसार स्त्री-पुरुष के रूप में नज़र आ रहे हैं पर यथार्थ में इन सबके हृदयों में वही अथाह और बेअन्त सबका मालिक ईश्वर ही सुरत स्त्री के रूप में इस तरह से सुशोभित है कि उसका अंत कोई नहीं पा सकता।

14

इक (ईश्वर) नू भैणां भुलियाँ।
कर्मां कष्ट दिखाए हज़ार।।
इको रूप पछान लवो।
फिर कर्म न सकन कुछ बिगाड़।।

जो भी उस एक ईश्वर को विस्मृत कर इस संसार में अनैतिक कर्म करता है उसे निश्चित ही कर्मफल के रूप में असंख्य पीड़ा व तकलीफ़ें भोगनी पड़ती हैं। इसके विपरीत जो इंसान अपने असलियत स्वरूप की पहचान कर निष्काम व अकर्त्ता भाव से कर्म करता है उसके मन में किसी प्रकार का कोई बिगाड़ यानि दोष उत्पन्न नहीं हो सकता।

15

सदा याद रखो-
आना अकेला फिर जाना अकेला,
चार दिनों का है दुनियाँ का मेला
आने जाने वेले फिर कोई नहीं तेरा साथी
ईश्वर परमात्मा दी देख लवो झाँकी।

इस संसार में हर किसी को अकेला ही आना है और अकेला ही यहाँ से प्रस्थान करना है। इस संसार रूपी चार दिन के मेले में आने-जाने के समय किसी का कोई साथी नहीं होता। अतः मुझे इस आने-जाने के खेल में न फँसकर यानि जगत से निर्लेप रहकर पारब्रह्म परमेश्वर के अनुभव द्वारा दर्शन कर मोक्ष प्राप्त करना है।

16

जीवन लक्ष्य प्राप्ति हेतु-
उस ईश्वर दे तूं गुण गा लै।
उस ईश्वर दा ध्यान लगा लै।।
उस ईश्वर दा सिमरन करके।
एहो धन-दौलत चलेगा साथ।।

उस ईश्वर के गुण गाने व उसी का ही ध्यान लगा सिमरन द्वारा अपने ख़्याल को उसी के साथ जोड़े रख मैं असली धन-दौलत यानि सत्य कमा सकता हूँ। यही इस जगत से मेरी मुक्ति का आवश्यक आधार है।

17

मानो-
श्री राम हर अंदर वस्से, तुसां ढूँढन जंगल मत जावनां
क्योंकि
हर अंदर है ओ जोत इलाही, मन मंदिर टिकाणाँ है जानना

सबके अन्दर जिस ईश्वर का वास है उसे जंगलों में जाकर तलाशने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जो इलाही जोत सबके हृदय रूपी मन-मन्दिर में जगमगा रही है उसमें वही सुशोभित हो रहा है।

18

ज्योति स्वरूप का प्रकाश पाने हेतु पकड़ो अपना आप
खावन पीवन विच दिन न बिताइयो
निद्रा विच न रात।
नाम ध्यान विच इस्थर रहियो
जपियो अजपा जाप।।

इस अनमोल मानव जीवन को पाने के उपरांत मैंने अपने जीवन का अनमोल समय यानि दिन-रात मात्र खाने-पीने व निद्रा में ही बिता दिए हैं किन्तु अब मुझे ज्योति स्वरूप का प्रकाश पाने हेतु यानि अपने जन्म की बाज़ी जीतने के लिए अपने स्वभाव व वृत्ति को निज स्वरूप के अंतर्गत कर सदा नाम-ध्यान में स्थिर रहना है।

19

ध्यान दो-
त्रेते विच होय सेवक स्वामी।
द्वापर होय भक्त भगवान।।
कलुकाल गुरु चेला कहावे।
सतवस्तु साजन सजन महान।।

इंसानों के मन में संकल्प के पैदा होते ही जो सतयुग में एकभाव था क्रमशः त्रेता युग में सेवक-स्वामी, द्वापर युग में भक्त-भगवान व कलियुग में गुरु-चेले के भाव में तबदील हो गया। फलतः इंसान उस नित्य शब्द के स्थान पर निमित्त शरीरों को गुरु मानने की भूल कर बैठा। भूलवश हुई यही अज्ञान धारणा कारण बनी उसके नैतिक पतन की व जीव के जन्म-जन्मांतरों तक जन्म-मरण के चक्रव्यूह में फँसे रहने की। मेरे साथ ऐसा न हो इस हेतु मुझे सदा अपने मन को सत् स्रोत यानि उस वास्तविक आद् सत्ता जिसमें 'मुझ' 'सुरत' के साजन परमेश्वर सुशोभित हैं उन महान में लीन रखते हुए पुनः एक-भाव यानि सजन-भाव अपनाना है।

20

विचार कहता है-
जनचर-बनचर, जड़-चेतन में एक प्रकाश समझो
और
निष्काम हो जाओ।

अपने मन में इस बात को मुझे अच्छी तरह से बिठाना है कि जनचर-बनचर जड़-चेतन में ब्रह्म सत्ता के रूप में एक ही ज्योति प्रकाशित है। अतः मुझे ऐसा

अच्छा इंसान बनना है जिसमें किसी प्रकार की कामना, आसक्ति या इच्छा न हो ताकि मैं इस जगत में निष्काम-भाव से हर कार्य करता हुआ अपना चित्त शुद्ध रख पाऊँ और मुझे मुक्ति की प्राप्ति हो सके।

21

ईश्वर कहते हैं-
ओ३म् ओ३म्, ओ३म् विच जड़या होया हाँ।
ओ३म् ओ३म्, ओ३म् विच खड़ा होया हाँ ।।

परमेश्वर अपने प्रति जो मुझसे कहना चाहते हैं वे अपने बारे में वर्णन करते हुए इस प्रकार कहते हैं कि 'मैं' ही ओ३म् यानि परमात्मा के सूचक ओंकार शब्द में स्थित व स्थिर हूँ।

22

ओ३म् शब्द का महत्त्व-
ओ३म् दा ही मन्त्र है, ओ३म् ही स्वतन्त्र है।
ओ३म् दे हिन चार वेद, छः शास्त्रां दा प्रकाश है।।

ओ३म् प्रणव शब्द ही हमारा गुरु मंत्र है। चार वेद और छः शास्त्र भी इस की ही अभिव्यक्ति हैं। यह न तो किसी के अधीन है और न ही किसी नियम आदि में बंधनमान है यानि स्वतंत्र है।

23

ब्रह्म स्वरूप है अपना आप, हम तो हैं ओही प्रकाश
अर्थात्
कीड़ी कोलों हाथी अन्दर, ब्रह्मा कोलों तृण अन्दर
ब्रह्म स्वरूप ही है।

सबसे बड़ी, परम तथा नित्य चेतन सत्ता जो जगत का मूल कारण और सत्-चित-आनंद स्वरूप मानी गई है वह ही मेरा अपना आप है। वह ज्योति ही हम सबमें प्रकाशित है अर्थात् कीड़ी से लेकर हाथी तक, ब्रह्मा से लेकर तृण तक ब्रह्म स्वरूप ही है।

24

असलियत स्वरूप है जे ब्रह्म,
जैंदा रूप रेखा नहीं रंग।।
ओ३म विच विशेष हूँ, ओ३म तूं निर्लेप हूँ ।।

ब्रह्म ही मेरा वह असलियत स्वरूप है जिसका कोई रूप, रेखा व रंग नहीं। वह ही ईश्वरवाचक शब्द ओ३म् में विशेष होते हुए भी उससे निर्लेप है।

25

ओ३म् तत् ओ३म् सत्।
ओ३म् जप ओ३म् तप।।
ओ३म् दा है विस्तारा, ओ३म् जपो।
जपो ओ३म् ओंकारा ओ३म् जपो।।

ओ३म् का सार सत्य है और यही ओ३म्कार शब्द परमात्मा का सूचक है। इसी का ही ब्रह्म सत्ता के रूप में सारे ब्रह्मांड में विस्तार यानि फैलाव है। इसलिए इसी शब्द के नियमानुसार जप-तप द्वारा एक इंसान अपने शरीर अथवा इन्द्रियों को वश में रख चित्त को भोग-विलास की वृत्ति से बचाए रख सकता है। अब जब मुझे यह बात समझ आ गई है तो मेरे लिए ओ३म् शब्द के अजपा जाप द्वारा अपने मन को ओ३म्कार शब्द यानि परमात्मा में लीन रख इस जगत में निर्लिप्तता से विचरते हुए सदा तृप्त बने रहना है।

26

ओ३म् तत् सत् ब्रह्म।
सत् चित् आनन्द स्वरूप।।
जैंदा रूप रेखा न रंग।
ओ३म् तत् सत् ब्रह्म।।

ओ३म् इस ब्रह्मांड का सारांश है और सत्-चित-आनन्द स्वरूप ब्रह्म जिसका रूप, रंग व रेखा नहीं उस परमात्मा का सूचक है। यह सत्य ही जगत का मूल कारण है।

27

संसार है ओ आत्मा, परमात्मा आधार है।
निराकार आकार न कोई
है ओ अपरम्पार है।।

यह संसार आत्मा है। इसका मूल वही सर्वव्यापी व सर्वशक्तिमान निराकार अनंत परमात्मा है जिसका कोई पारावार नहीं।

28

ख़्याल जदों अपने घर विच राहवे।
तदों जीव विश्राम नूं पावे।।

वही जीव विश्राम पा सकता है जो जगत में विचरता हुआ अपना ख़्याल अपने घर यानि आद् शब्द में जोड़े रख, उसी में स्थित रखने में कुशल हो सकता है।

29

चाहे श्री राम जपो, चाहे रहीम जपो
चाहे श्री कृष्ण जपो, चाहे करीम जपो
चाहे जपो निरंकारा
हम प्रकाशित हैं, हम प्रकाशित हैं।

कोई चाहे श्री राम जपे, चाहे रहीम जपे, चाहे श्री कृष्ण जपे, चाहे करीम जपे,

चाहे निरंकार जपे इन सब नामों में वही सर्वशक्तिमान रूप, रंग, रेखा से रहित परमात्मा ही प्रकाशित है।

30

हर अन्दर मैं जाप रिहा।
कोई विरला जाणे।।
हर अन्दर प्रकाश रिहा।
कोई विरला पहचाणे।।

ब्रह्म ही ब्रह्म-सत्ता के रूप में इस सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है और उसी के आलोक से यह ब्रह्मांड प्रकाशित है पर यह सत्य कोई विरला ही जान-पहचान सकता है।

31

ईश्वर कहते हैं-
एक हूँ मैं एक हूँ, एक समझो हर थाईं।
व्याप रिहा हूँ हर अन्दर
उस जोत दी है रौशनाई।।

परमेश्वर यानि सबका स्वामी एक ही है। उसके सर्वव्यापक होने का सत्य मुझे अपने मन में अच्छी तरह से बिठा लेना है। वह ही सबके भीतर व चारों ओर फैला हुआ ज्योति स्वरूप परमात्मा है।

32

ईश्वर कहते हैं-
खालस सोना होके आवो।
मैं सागर विच टुब्बी लावो।।
तदों हीरे दी सार ओ पावो।
हीरे नाल हीरा हो जाओ।।

ईश्वर सुरत को अपनी ओर बुलाते हुए कहते हैं कि ख़ालिस सोने की भाँति अपने विशुद्ध व सुंदर रूप में मेरे पास आओ। फिर 'मैं' सागर में गोता लगा, मुझ हीरे की सार को पा मुझ हीरे के साथ हीरा हो जाओ।

33

बल्ले बल्ले बल्ले ओ बल्ले मेरा मित्र मेरा मित्र है जित्थे ओ कित्थे।
सानुं लभणा पैणा नहियों, हर अन्दर हर अन्दर ओ है अस्थिते।।

सब बातों में सहायक मेरा शुभचिंतक नित्य मित्र परमात्मा यहाँ-वहाँ सब जगह व सबके भीतर आसीन है। इसलिए उसे कहीं खोजने की आवश्यकता नहीं है। मैं सुरत अपने ऐसे निराकार मित्र पर बलिहारी जाती हूँ।

34

कार्य व्यवहार करते हुए निगाह चमत्कार
के साथ हमेशा के लिए जुड़ी रहे ।
अर्थात्
हथ कार वल, चित्त यार (ईश्वर) वल।

सब कार्यव्यवहार करते हुए मुझे अपनी निगाह उस चमत्कार के साथ हमेशा के लिए जोड़े रखनी है अर्थात् अपने हाथों से हर कार्य करते समय अपने चित्त को ध्यान द्वारा अपने इलाही यार ईश्वर के साथ जोड़े रखना है।

35

प्रभु कहते हैं-
एक हूँ एक हाँ, एक नज़रों में
एक ही एक हर अन्दर सुहा रहा।
जनचर-बनचर, जड़-चेतन ओ हर्षा रहा।।

वह ईश्वर एक ही है और वह एक ही हर एक में यानि जनचर, बनचर, जड़-चेतन में सत्-चित-आनंद स्वरूप में शोभायमान है।

36

प्रभु कहते हैं-
इको रूप तुम्हारा इको रूप तुम्हारा।
शरीर दी बनावट अलग-अलग।।
कोई पतला कोई भारा।
कोई गोरा कोई काला।।

सब प्राणियों के शरीरों की बनावट अलग-अलग होते हुए भी अर्थात् मोटे-पतले, गोरे-काले होते हुए भी सब एक समान हैं।

37

ईश्वरीय कला-
ओ कारियाँ दा है कारीगर।
साइंस दा विद्वान ओही।।
पल विच सृष्टि उत्पन्न करदा।
जान पावे महान ओही।।

यह ब्रह्मांड ईश्वरीय कला की अद्भुत रचना है। इस रचना को देखकर बोध होता है कि वह ईश्वर सबसे कुशल यानि कारियों का कारीगर होने के साथ-साथ साइंस का विद्वान भी है। वह ही पल में सृष्टि उत्पन्न कर उसमें प्राण फूँकने जैसा महान व अद्वितीय कार्य करता है। हम मनुष्य उसकी कला की रमज़ को परख कर व सभी बातों और तत्वों का विवेचन कर उसका पूरा और अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और इस प्रकार अपने जीवन उद्देश्य पूर्ति हेतु कार्य कुशलता प्राप्त कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि इसी अनुसार ही हम आत्मा के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ अविद्या अथवा माया नामक वृत्ति के प्रति भी जागरूक बने रह अपने बुद्धिबल को सदा निर्मल रख सकते हैं।

38

ईश्वरीय करामात-
इक पौदे नूं पानी मिले पातालों, इक नूं आकाशों आंदा है ।
कुदरत तेरी तूं कुदरत दा वाली कई कई खेल रचांदा है ।।

वह कुदरत का वाली ईश्वर ही अपने विचित्र खेल द्वारा एक पौधे को आकाश व पाताल से पानी देकर सींचने का चमत्कारी कार्य कुशलता से कर उसे विशाल वृक्ष का रूप दे सकता है और इस प्रकार हर प्राणी की पालना हेतु पत्र-पुष्प-फल प्रदान कर सकता है।

39

सजनो पतिव्रत धर्म दिखा के।
सुपने में परस्त्री परपुरुष दा ख़्याल न लियाओ।।
सच्चाई धर्म वर्तो ते वर्ताओ।
इन्सान हो तो इन्सानी दिखाओ।।

अपना पतिव्रत या पत्नीव्रत धर्म ठीक से निभाने के लिए स्वप्न में भी परस्त्री या परपुरुष को ख़्याल में नहीं लाना यानि पति ने पत्नी के प्रति व पत्नी ने अपने पति पर अनन्य प्रीति और भक्ति, नीति व न्याय अनुसार निभानी है। इंसान होने के नाते एक दूसरे के प्रति यह फ़र्ज़ सच्चाई-धर्म से निभाने की इंसानियत दिखानी है।

40

पतिव्रत धर्म दी इक निगाह ओहदी एक है दृष्टि,
सच्चाई धर्म दी चले ओ चाल।
सब नूं समझे माता पिता बहिन भाई बन्धु,
फिर ओ कदे नहीं खांदा हार।।

पतिव्रत या पत्नीव्रत धर्म की पालना करने वाले की एक निगाह एक दृष्टि होती है। तभी तो ऐसे सजन के लिए सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चलना सहज होता है और वह सबको अपना माता-पिता, बहन-भाई व बन्धु समझता हुआ समभाव-समदृष्टि की युक्तिनुसार सजन-भाव अपनाकर सर्व एक आत्मा का दर्शन करता हुआ अपने इस धर्म से कभी नहीं हारता।

41

फुरने का प्रभाव-
फुरने दी सृष्टि रचन।
फुरने दा विस्तार।।
फुरने दा है खेल खिलारा।
फुरने दा है संसार।।

यह सृष्टि रचना फुरने का ही फैलाव है यानि फुरने का ही परिणाम है अर्थात् फुरने का यह जगत, एक प्रकार का फुरने का ही खेल या तमाशा है। तभी तो इस मृतलोक के मायाजाल में फँसा हुआ मनुष्य तब तक निरंतर एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाता रहता है जब तक उसका मन उपशम हो फुरनों से आज़ाद नहीं हो जाता।

42

सजनो मेरी सुन लौ बात।
दुनियाँ तों राहवो आज़ाद।।
फुरने नाल झगड़ लै, फुरना छोड़ अफुरना कर लै।

जगत में विचरते हुए अपने ख़्याल पर जगत के किसी भी विषय-विकार के प्रभाव की फुरने के रूप में झलक पड़ते ही विचार शब्द द्वारा उसका परित्याग कर अपने ख़्याल को तत्क्षण ही उस फुरने से मुक्त कर लेना है। इस हितकर क्रिया में सफलता सुनिश्चित करने के लिए जो कुछ भी करना व छोड़ना पड़े उसे निर्भयता व त्याग भाव से संपन्न करने से नहीं सकुचाना चाहिए।

43

गृहस्थ धर्म विच रह के
अपने आप नूं पकड़ो
फिर
फ़र्ज़ अदा तुसां हँस के करो।

प्रसन्नता से गृहस्थ-धर्म का फ़र्ज़-अदा करते रहने के लिए मुझे सज्जनता परिपूर्ण स्वभाव अपनाने हैं। सजन-भाव मेरे भाव-स्वभाव से न छूट सके यह सुनिश्चित करने के लिए मुझे कदम-कदम पर विचार द्वारा अपना आत्मनिरीक्षण कर अपने आप को इस तरफ़ से संभाले रखना होगा ताकि मेरे हृदय में अन्य कोई भाव-स्वभाव घर कर मेरा गृहस्थाश्रम न बिगाड़ दे।

44

फ़र्ज़ अदा जेहड़ा करे इन्सान
बुद्धि लई उस अपनी पहचान।
इन्सानां विचों अक्लवान
पा लिया उस आत्मिक ज्ञान ।।

जो इंसान अपने गृहस्थाश्रम का कर्त्तव्य धर्म के अनुसार विधिवत् पालन करता है केवल वह ही अपने बुद्धिबल की पहचान रखने वाला सब इंसानों में अक्लवान व आत्मज्ञानी कहलाता है।

45

विवेकशील बनो-
पहले तोलो फिर बोलो
अर्थात्
जाँचो तोलो और तुल खड़ोवो

मुझे विवेकशील बनना है। तभी मैं अपने मुख से कोई भी शब्द निकालने से पहले उसकी तुलना करके उसमें निहित अच्छाई व बुराई तथा सत्य व असत्य को जान सकूँगा।

46

आवश्यकता से अधिक मत बोलो-
वाद विवाद किसे नाल न कीजे
जिह्वा राम नाम रस पीजे।

आवश्यकता से अधिक बोलने यानि वाद-विवाद में उलझ समय बरबाद करने के स्थान पर मुझे मन-वचन को उस परमात्मा में लीन रखते हुए इस जगत से विरक्त रहना है।

47

मानवता का आवश्यक गुण-
आओ जी, बैठो जी, खाओ जी वे सजनो,
सजनो वे साडा सजन जी होवे बोल।
जी जी दा होवे वर्त वर्ताव, अपनी जिह्वा नूं बुलाओ जी,
जी जी दा पहरेवा सजनो पाओ।।
याद रहे- 'जी' एक आदर-सूचक शब्द है।

मानवता धर्म यानि सजन-भाव अनुरूप आवश्यक गुण अपनाते हुए सबके साथ आओ जी, बैठो जी, खाओ जी यानि 'जी-जी' का व्यवहार करना है। मुझे याद रखना है कि 'जी' एक आदरसूचक शब्द है इसलिए मुझे अपनी जिह्वा को इसी स्वभाव में ढालना सुनिश्चित करना है।

48

इको दी पूजा इको दी यादगीरी।
न होगी अमीरी न होगी फ़कीरी।।

अगर मैं केवल उस एक परमेश्वर के प्रति श्रद्धा, सम्मान, विनय आदि प्रगट कर आराधना व स्मरण करना सुनिश्चित करता हूँ तो मेरे हृदय में अमीरी-ग़रीबी का सवाल नहीं पनप सकता। यह होगा मेरा अपने बल, बुद्धि की पतन अवस्था से उबर उदारचित्त हो अपनी उत्कृष्टता सिद्ध करना।

49

हुकम बड़ा बलवान, सब कुछ हुकम करदा।
हुकम बड़ा महान, सब कुछ हुकम करदा।
हुकम ते जेहड़े चल पड़े, ओ बाज़ी लवण जित।
ओ हार कदे नहीं खांवदे, उन्हां दी जित्त जित्त ही जित्त।।

हुक्म यानि उस ईश्वर का आदेश सबसे श्रेष्ठ व बलवान होता है जो सब कुछ करने व कराने में सामर्थ्यवान होता है। तभी तो उस ईश्वर का हुक्म सबसे महान कहलाता है। इसलिए कहा गया है कि इस जगत में जो भी इंसान उस ईश्वर के हुक्मानुसार आचरण या व्यवहार करता है वह अपने जन्म की बाज़ी को जीत सकता है। ऐसा इंसान किसी भी हाल में किसी से हार नहीं सकता। वह तो सदैव जीतता ही जीतता है।

50

कभी मत भूलो-
शांति शक्ति का हथियार है।
अर्थात्
जित्थे तुसां शांति जानो, उत्थे तुसां शक्ति पछानो।

शांति-शक्ति का हथियार है अर्थात् जिसके मन की अवस्था निश्चल है वह ही सबसे बलवान है और वह ही निर्बाध कोई भी काम करने व करवाने का पराक्रम दिखा सकता है।

51

तीन प्रकार के इन्सान होते हैं -
1. उत्तम - आज्ञाकारी
2. मध्यम - जो गिर-गिरकर फिर खड़ा हो
3. मंद अधम - जो वचनों के विरुद्ध चले
आओ उत्तम पुरुष बनने का संकल्प लें।

तीन प्रकार के इंसान होते हैं पहला उत्तम यानि आज्ञाकारी, दूसरा मध्यम यानि जो गिर-गिरकर फिर खड़ा होता है तथा तीसरा मंद अधम यानि जो वचनों के विरुद्ध चल मूर्खता व दुष्टतापूर्ण नीच व निकृष्ट कर्म करे। इसलिए मैंने अपने मन में उत्तम पुरुष बनने का निश्चय लिया है।

52

निर्विकार बनो-
विषय विकारां विच चित्त न लावीं,
इन्हां कोलों तूं बच के राहवीं
ए हैन नरक दा द्वार।

निर्विकारी बने रहने के लिए वे विषय जिन्हें इन्द्रियाँ ग्रहण करें उनसे अपने चित्त को आज़ाद रखना है, ताकि वे विकार मेरे मन का रोग न बन जाएँ और मेरे मन की वृत्ति दोषपूर्ण हो उपद्रवी न बन जाए। मुझे समझ आ गई है कि इन्हीं विषयों में लिप्त मानव पाप कमाता है और तद्नुसार उस पाप का फल भोगता है जो अति पीड़ादायक व कष्टदायक होता है। जिस किसी से भी ऐसी भूल होती है वह मानव ही तो नरक भोगता है।

53

इनसे बचो-
जहाँ काम का परिवार है कामना
और दोस्त है क्रोध,
वहाँ लोभ का दोस्त है मोह
अहंकारता तो कुलनाशक है ही।

काम यानि इन्द्रियों की अपने-अपने विषयों की ओर प्रवृत्ति से बचे रहना है ताकि मेरा मन किसी भी आसक्ति का शिकार होकर स्वार्थपरता न अपना ले। अगर ऐसा होता है तो मैं कामनाओं के चक्रव्यूह में फँस जाऊँगा। फिर जहाँ किसी भी कामना की अपूर्त्ति के प्रभाव से मेरी चित्तवृत्ति का उग्रभाव क्रोध मुझे कष्ट या

हानि पहुँचाने वाले अथवा अनुचित कार्य करने वाले के प्रति रोष या कोप प्रगट करने पर मजबूर कर देगा वहीं किसी कामना की पूर्त्ति मुझे उस वस्तु या विषय की प्राप्ति हेतु इस तरह से लोभी बना देगी कि मैं चाह कर भी उसको त्यागने में सफल नहीं हो पाऊँगा। यह होगा मुझ द्वारा ईश्वर का ध्यान छोड़कर शरीर तथा सांसारिक वस्तुओं को अपना तथा सब कुछ समझना यानि मोह जाल में फँसना। मुझे समझ आ गया है कि मोह ही तो अज्ञान के कारण प्रेम, प्यार, भय, दुःख, घबराहट, भ्रम-भ्रांति, अत्यंत चिंता आदि जैसे भावों द्वारा चित्त में विकलता व बेहोशी उत्पन्न करता है। चित्त की इसी मूर्च्छित अवस्था के कारण ही मनुष्य अभिमानी हो अपने कुल का नाश कर बैठता है।

54

याद रखो-
काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार पर विजय साधन
सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म।

काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार पर विजय साधन संतोष, धैर्य, सच्चाई व धर्म हैं। इसलिए मुझे इन पाँच विकारों पर विजयी होने के लिए सदा प्रसन्न रहना है तथा किसी बात की इच्छा, चिंता व शिकायत नहीं करनी। चित्त की स्थिरता द्वारा निर्विकार बने रहना है। सच्चा होने का भाव यानि सत्यता अपनानी है व अपने मूल स्वभाव को मानव-धर्म की नीति अनुसार न्यायसंगत ढालना सुनिश्चित करना है।

55

कलियुग के इन्सान की हालत ईश्वर बताते हैं-
भेजया हाई तैनूं सच वणजन नूं।
झूठ दा कीता हेई व्यापार।।
डरदा होया मेरे निकट न आवे।
भुलिया फिरे गँवार।।

ईश्वर के कथनानुसार कलियुग के इंसान की हालत बहुत निकृष्ट है। इस अवस्था से उबरने हेतु मुझे उस ईश्वर ने जिस कार्य सिद्धि के लिए इस मृतलोक में भेजा है उसे इस तरह सत्यता से करना सुनिश्चित करना है कि किसी विधि भी झूठ मेरे अन्दर क्रियाशील न हो सके और मैं उस ईश्वर का संग करना तो दूर की बात है उसका नाम लेने में भी भयभीत हो मूर्खतापूर्ण विचरते हुए जन्म-मरण के चक्रव्यूह में न फँस जाऊँ।

56

द्वैत, तृष्णा, वैर-विरोध, तेरी-मेरी, कामना,
वासना, कूड़-कपट, ईर्ष्या, झूठ, चोरी, निंदा,
स्वार्थपरता, कुकर्म व अधर्म से
गृहस्थाश्रम, समाज और परमार्थ बिगड़ता है।

द्वैत, तृष्णा, वैर-विरोध, तेरी-मेरी, कामना, वासना, कूड़-कपट, ईर्ष्या, झूठ, चोरी, निंदा, स्वार्थपरता, कुकर्म व अधर्म आदि गृहस्थाश्रम, समाज, स्वार्थ व परमार्थ बिगड़ने के कारण होते हैं क्योंकि इन विषय-विकारों द्वारा मन में भेदभाव, संशय, लोभ, शत्रुता, मनोरथ सिद्धि, मानसिक सुख-दुःख की भावना, मिथ्या विचार या ख़्याल, नासमझी, दुराव-छिपाव, जलन, असत्यता, ख़ुदगरज़ी व दूसरों के दोष बतलाने का भाव आदि उत्पन्न होता है। मन की यही

अस्थिर अवस्था मनुष्य को धर्म के विरुद्ध कार्य जैसे अन्याय, दुराचार आदि करने के लिए बाध्य करती है। फलतः व्यक्तिगत व पारिवारिक सुख-चैन यहाँ तक कि परमार्थ भी बिगड़ जाता है। तभी तो नीतिपथ से भ्रष्ट ऐसे मनुष्यों का चाल-चलन अच्छा नहीं होता और वे बुरी दशा को प्राप्त होते हैं। उनकी यही ख़राबी समाज में नैतिक पतन का कारण बनती है।

57

सच चानणा है, झूठ अंधेरा है इसीलिए-
झूठ पहरेवा लहाना जे सजनो, जेहड़ा करदा जे औखा।
सच दा पहरेवा पाना जे।
जेहड़ा करदा ओ सौखा।।

जहाँ सत्य अपने आप में वह प्रकाश है जो सदा जैसा है वैसा ही रहता है वहीं झूठ का कोई वास्तविक आधार नहीं होता। वह तम् का प्रतीक होता है। इसलिए मुझे अपना आत्मनिरीक्षण कर झूठ आधारित भाव-स्वभाव रूपी पोशाक उतार अपने मन के उग्र भाव को दूर करना है क्योंकि यह मेरी हर विपत्ति का कारण बन सकता है। मेरे साथ ऐसा न हो इस हेतु मुझे सच का स्वाभाविक पहरेवा पहनना है ताकि मैं आजीवन निश्चल, निष्कपट व एक अच्छा इंसान बन ईमानदारी से जीवन जी सकूँ।

58

याद रखो-
सुकर्म और धर्म दा सजनो ईश्वर साथी होता है
वेदां विच लिखया है
झूठ बोलन करके सजनो परलोक बिगड़ जाता है।

वेदों के विधान अनुसार ईश्वर केवल उचित व्यवहार द्वारा अच्छे कर्मों को करते हुए अपना कर्त्तव्य का पालन करने वाले व्यक्तियों के ही साथी होते हैं। इसके विपरीत जो झूठ बोलने वाले व्यक्ति होते हैं वे बुरी दशा को प्राप्त होते हैं यानि उनका परलोक बिगड़ जाता है।

59

याद रखो-
लालच बुरी बला, ओ लालच बुरी बला ।
कई जीवां दा करे ओ ख़ात्मा, लालच करे तबाह।
हाँ हाँ लालच करे तबाह।।

लोभ यानि कुछ पाने की बहुत अधिक व अनुचित इच्छा रखना अच्छा नहीं होता क्योंकि यह हर दुःख, कष्ट व बखेड़े आदि का कारण बनती है। यहाँ तक कि इस निकृष्ट रोग से मानव के अनमोल जीवन तक का अंत हो जाता है।

60

सुख-शांति हेतु अति आवश्यक -
मनमत ते सजनो न चलना।
गुरुमत दा संग असां करना।।
याद रहे - शब्द है गुरु, शरीर नहीं है।

अपनी सुख-शांति हेतु 'शब्द है गुरु, शरीर नहीं है' की नीति अनुसार धारणा करनी है ताकि मनमत के अनुसार स्वार्थप्रद आचरण या व्यवहार अपनाकर मैं सांसारिक विषयों का अनुरागी बन अपने परमात्मा स्वरूप से आत्मज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ न हो जाऊँ।

61

याद रखो-
जैसी करनी वैसी भरनी।
आज नहीं तो निश्चित कल।।
इसलिए अच्छा-अच्छा सोचो, देखो, बोलो व करो।

मैं जैसा कर्म करूँगा उसी तरह का ऋण वर्तमान में नहीं तो भविष्य में किसी दूसरे समय यकीनन चुकाना पड़ेगा। इसलिए हर विषय पर मुझे मन में सदा अच्छा विचार करना है और फिर उसका अवलोकन करते हुए अच्छे से ही उसे मन-वचन-कर्म द्वारा क्रियान्वित करना है।

62

धर्म मत हारना रे, धर्म के ऊपर सजनो
तन-मन-धन सब वारना रे।।

सजन-पुरुष बन अपने मूल गुण यानि मानव-धर्म पर न्यायसंगत डटे रह उसे मन-वचन-कर्म द्वारा साधे रखने का सिद्धांत सुदृढ़ता से अपनाना है चाहे इसके लिए मुझे अपना तन-मन-धन सब ही क्यों न न्योछावर करना पड़े।

63

मोह त्याग दो क्योंकि-
कुटुम्ब कबीला बन्धु प्यारे
हैन भैंणों मतलब दे सारे
इन्हाँ विच प्रीत न लाईं।

जन्मोपरांत जो भी भाई-बंधु, परिवार व समाज के रूप में रिश्ते बनते हैं वे सबके सब स्वार्थ सिद्धि हेतु होते हैं। उन द्वारा कभी भी संतुष्टि प्राप्त नहीं हो सकती इसलिए उनके साथ जुड़ना अपने आपको मोह बंधन में फँसाना है। इसलिए मेरे लिए उनके प्रति मोह त्यागना ही उचित है।

64

याद रखो-
स्वार्थी मतलब दे, मतलब दे हिन यार स्वार्थी मतलब दे।
मतलब जेहड़े वेले निकल गया फिर करदे नहीं ओ प्यार।।

स्वार्थी मनुष्य अपना मतलब सिद्ध करने हेतु ही किसी के साथ मित्रता बनाते हैं और जैसे ही उनका उद्देश्य पूरा हो जाता है फिर वे मुख फेर लेते हैं।

65

कलुकाल जब हटने लगा तो
वह दिन आने वाला साजन जी
वह दिन आने वाला।

अब वह समय आ गया है जब वर्तमान युग यानि कलुकाल हटने वाला है। इसलिए कलियुगी भाव-स्वभावों से छुटकारा पाने हेतु अविलम्ब अपने हृदय रूपी घर को सतयुग बनाना आवश्यक है।

66

जो करे वही बहादुर

दोस्ती छड के ते कलुकालड़े दी, राम नाम नाल कर लो प्यार सजनो।
राम नाम ही संग चलना जे, दोस्ती उसे दे नाल हुण लावो सजनो।।
कलुकाल दा पहरेवा बदल के ते, सतवस्तु नाल प्रेम बढ़ावो सजनो।
जैंदी प्रेम नाल प्रीत है उन्हां ताईं, उस यार नाल यारियां लावो सजनो।।

एक शूरवीर की तरह वर्तमान युग के कलियुगी भाव-स्वभावों से मित्रता नहीं करनी है अपितु यश-कीर्ति की प्राप्ति हेतु इस मिथ्या संसार की असारता को ध्यान में रखते हुए उस नित्य ईश्वर को अपना सच्चा साथी मान उसी से ही विशुद्ध प्रेम करना है। मुझे उस मनोवृत्ति में ढलना है जो मुझे सदा ईश्वर को सबसे श्रेष्ठ समझ कर हमेशा उसके साथ अथवा पास रहने के लिए प्रेरित करे। मैं जान गया हूँ कि उस ईश्वर संग मैत्री-भाव अपनाकर ही मेरा मन इस जगत में विचरते हुए संतुष्ट रह सकता है।

67

कलुकाल दी छडो सजनो वृत्ति।
सतवस्तु दी वृत्ति धारण करो।।
सतवस्तु विच सच ही बोलचाल।
सत् सत् ही उच्चारण करो।।

अब मुझे कलियुगी भाव-स्वभावों के बंधन से मुक्त हो पवित्र वृत्ति ग्रहण कर उसी के सहारे अपना निर्वाह करना है। यह वृत्ति सतवस्तु की वृत्ति है जिसको अंगीकार करने वाला जैसा हो वैसे ही नित्य व्यवहार की प्रणाली अपनाते हुए सजन-भाव अनुरूप सदैव धीरता से सत्य उच्चारण करता है।

68

जिसने मन्दे संग नाल संग किया।
ओ इन्सान दा वी हैवान हुआ।।
फिर अकल डिगी मनुराज अन्दर।
ओ मौत दे मुँह बलिदान हुआ।।

दुष्ट जनों का संग नहीं करना क्योंकि उनकी सोहबत से पशुवृत्ति यानि हैवानी बुद्धि पनपती है और मेरे बुद्धि बल की श्रेष्ठता कुप्रभावित होती है। इस प्रकार मेरी बुद्धि का भ्रष्ट होना मन की अधीनता स्वीकार धीरे-धीरे मौत के मुँह में जाने का प्रतीक होगा। मुझे अपने आप को इस भारी संकट से हर कीमत पर बचा कर रखना है।

69

श्रेष्ठ पुरुष बनने हेतु-
ख़बरदार अक्ल (बुद्धि) ते राहवीं
बुरा संग कर अक्ल अपनी न गंवावीं।
अक्ल न कर बरबाद, अक्ल कर लै तूं आज़ाद।।

श्रेष्ठ पुरुष बनने के लिए अपने बुद्धिबल के प्रति सावधान रहना है। इस हेतु मुझे अपनी बुद्धि को संसारी विषयों से आज़ाद रखना है ताकि कहीं उनके प्रभाव के

कारण यह मंद हो निकृष्ट न हो जाए। मुझे समझ आ गई है कि अगर ऐसा होता है तो मेरा मन विषयों के अधीन हो इधर-उधर भटक जाएगा और फिर मेरे लिए चिंता रहित व निर्भय बने रहना असंभव हो जाएगा।

70

बुद्धिमान बनो-
अक्लवान ते ईश्वर रैंहदे प्रसन्न।
अक्ल इन्सान नूं करदी है दंग।।
अक्ल वेदों में है विदित।
अक्ल वेदों में है अस्थित।।

जिस इंसान की सोचने-समझने और निश्चय करने की शक्ति बुद्धि निर्मल होती है केवल वही ईश्वर के संग द्वारा संतोष प्राप्त कर पाता है और जगत में विचरते हुए तुष्ट बना रह उसी के संविधान अनुकूल जीवनयापन करता हुआ कुल सृष्टि को चकित कर सकता है। ऐसा बुद्धिमान बनने के लिए मुझे वेदों में विदित सच्चे और वास्तविक सत्य ज्ञान को यथार्थता से धारण करना होगा।

71

सतवस्तु में क्या होगा सजनो सुनो-
सतवस्तु में विचार ते सतज़बान होसी।
एक दृष्टि, एकता महान होसी।।
न जप, न तप, न भजन, न बन्दगी।
एक अवस्था ओ जगत जहान होसी।।

सतवस्तु में विचार ते सतज़बान होगी। एक दृष्टि, एकता महान होगी। न जप, न तप, न भजन, न बन्दगी, एक अवस्था ओ जगत जहान होगी।

72

एक निगाह ओ एक दृष्टि।
ओ एक दृष्टि ओ एक दर्शन।।
जनचर बनचर ओ जड़ चेतन।
ओ एक दर्शन ओ एक दर्शन।।

सतवस्तु में एक निगाह एक दृष्टि होगी और एक दृष्टि एक दर्शन होगा अर्थात् सभी जनचर, बनचर और जड़-चेतन में उस एक दर्शन की पहचान करने वाले होंगे।

73

सतवस्तु जिन्होंने पहचान लई।
सत् करे वर्ताओ।।
सत् है ओन्हां दे घर दी रसम।
सत् है रसम रिवाज़।।

जो भी अपने अंतर्निहित नित्य आत्मा रूपी सतवस्तु को पहचान लेता है केवल वह ही सत्य को अपने आचार, विचार व व्यवहार में उतार सकता है। तभी तो सत्य ही उसके घर-परिवार के रसम-रिवाज़ होते हैं और फिर आपसी मेल-जोल के स्वभाव के कारण उनका गृहस्थ-आश्रम कभी बिगड़ता नहीं।

74

सतवस्तु विच नेह कलंक अवतार,
चतुर्भुजधार सतवस्तु दा सिंगार होसी।
जैंदा रूप न रेखा न रंग कोई,
फिर ओही तो सिरजनहार, बिन सूरजों चमत्कार होसी।।

सतवस्तु में रूप, रंग, रेखा से रहित सिरजनहार चतुर्भुजधार नेहकलंक अवतार सब प्राणियों के हृदय में प्रगट हो सतवस्तु की शोभा बढ़ाएंगे और उनके बिन सूरजों प्रकाश की करामात से सभी के हृदय प्रकाशित हो जाएंगे। तभी तो उस समयकाल में हर मानव की निर्मल वृत्ति, स्मृति, बुद्धि व बाणा निर्मल होगा यानि वे उच्च बुद्धि उच्च ख़्याल होंगे।

75

सच वर्तो सच वर्त-वर्ताओ।
सच उपदेश सच दी पौड़ी चढ़ाओ।।
सच-सच जिह्वा कर सचखण्ड भर लौ।
सच-सच सजनो सच नूं फड़ लौ।।

सत्य भाव अनुरूप ही सच को अपने वर्त-वर्ताव में लाना है और सभी को सत्यार्थ बना अपने घर परमधाम पहुँचने की नसीहत देनी है। इस हेतु मुझे वास्तविकता को अपनाकर अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति में वैसा ही स्पष्ट उच्चारण करते हुए अपने हृदय रूपी सचखंड को सत्य से भरपूर कर लेना है। यह होगा एक सजन पुरुष बन सत्य को इस प्रकार सत्यता से ग्रहण करना कि वह फिर कभी मुझसे छूट न सके यानि मेरे स्वभाव या वृत्ति में स्थिर रहे।

76

सच ओ बोलचाल सच ओ खानपीन।
जेहड़ा सच दा सौदा करता है।।
बेफ़िकरा दिन रात ओ राहवे।
ओ किसे कोलों नहीं डरता है।।

मेरे नित्य व्यवहार की कथन प्रणाली व खान-पीन सत्य अनुरूप हो ताकि मेरे मन में ऐसा मनोविकार उत्पन्न न हो जो मेरा शोषण कर सके। तभी सत्य के आदान-प्रदान द्वारा मैं अपने जन्म-मरण की क्रिया को समाप्ति की ओर ले जाकर अपना जीवन उद्देश्य संपादित कर सकूँगा। फिर मेरे मन को दिन-रात न ही किसी बात की चिंता सताएगी और न ही किसी अनिष्ट अथवा हानि की आशा उसे व्याकुल कर पाएगी। यही निर्भयता ही मेरे मन की शांति की हेतु होगी।

77

ध्यान दो-
बाल अवस्था की भक्ति
नाम चलाना और ध्यान लगाना
यह बुद्धि थोड़ी अनजानपने के कारण
नचनी-टपनी (चंचल) होती है।

अज्ञानता के कारण बाल अवस्था का भक्ति-भाव अपनाना मन की चंचलता का हेतु होता है। इसलिए इस युक्ति द्वारा नाम को अपने हृदय में प्रवाहित कर ध्यान द्वारा उस नाम शब्द का बोध कर धारण करना या प्रवृत्ति में लाना सहज नहीं होता। यह इंसान का मंद बुद्धि व मन का अधीर होना दर्शाता है।

78

सदा याद रखो-
जेहड़ा अन्दरूनी वृत्ति, प्रभु दा ध्यान लगावेगा।
ओ सजन इन्सान जीवन सफल बनावेगा ओ सफल बनावेगा।
जेहड़ा सजन शरीर दा ध्यान लगावेगा।
तलियाँ मल मल सजन जगत तों खाली ओ जावेगा।।

जो अन्दरूनी वृत्ति में इन्द्रिय निग्रह द्वारा अपना मन प्रभु में लीन रखता है या उसी में ध्यानस्थ रहता है वह सजन पुरुष ही अपना जन्म सफल बनाने के योग्य हो सकता है। इसके विपरीत जो इंसान शरीरों का ध्यान लगाता है वह इस संसार में आ अपना जन्म व्यर्थ गँवाकर आवागमन के चक्कर में फँसा रहता है। फलतः उसके पास पछतावे के सिवाय कुछ नहीं रहता।

79

युवा-अवस्था की भक्ति के अनुसार
बैहरूनी-वृत्ति अब शोभा नहीं देती। वृत्ति मौन की होनी चाहिए।
सजनो तुसां बालक नहीं नादान, हो तुसां हुन नौजवान।
पा लवो आत्मिक ज्ञान, पावो विश्राम सजनो पावो विश्राम।।

युवावस्था की भक्ति के अनुसार मर्यादा से हटकर कोई स्वभाव नहीं अपनाना और न ही कोई कार्य करना है क्योंकि अब मुझे बैहरूनी वृत्ति शोभा नहीं देती। मुझे मौन वृत्ति अपनाकर जितनी आवश्यकता है उतनी ही बात करना सुनिश्चित करना है क्योंकि अब मैं अबोध व्यक्ति नहीं हूँ, नवयुवक हो चुका हूँ। अतः मुझे आत्मा से संबंध रखने वाला आत्मिक ज्ञान प्राप्तकर विश्राम पाना है।

80

युवा अवस्था की भक्ति अपनाओ
यह है - समभाव-समदृष्टि की युक्ति
इससे बल की प्राप्ति के साथ-साथ
शक्ति भी ताकतवर होती है।

युवा अवस्था की भक्ति जो है समभाव-समदृष्टि की युक्ति अपनानी है क्योंकि इसी द्वारा बल की प्राप्ति होने के साथ-साथ मेरी शक्ति भी ताकतवर हो सकती है और मैं सबको बराबर समझते व एक सा देखते हुए कुछ भी करने में समर्थ हो सकता हूँ।

81

संकल्प नू समझाओ सजनो, संकल्प नू समझाओ ।
अकल टिकाणे आ गई, अक्लमन्द नाम कहाओ।।
कुसंग हमारा कोई भी नहीं
कुसंग हमारा संकल्प ही है।

कोई भी काम करने का पक्का विचार या इरादा करने से पहले उसे अपने मन में अच्छी तरह से समझने व बिठाने हेतु अपनी बुद्धि रूपी विचारशक्ति के इस्तेमाल से उसके यथार्थ को समझना है। तभी मैं बुद्धिमान, संकल्प कुसंगी के संग से यानि बुरी सोहबत से अपने ख़्याल को आज़ाद रख पाऊँगा। फिर इसी तथ्य से कि कुसंग हमारा कोई भी नहीं, कुसंग हमारा संकल्प ही है, सबको अवगत करा इसके प्रति सावधान कर परोपकार कमाने का पुरुषार्थ दिखा पाऊँगा।

82

सावधान-
संकल्प कुसंगी तों बच इन्सान, उस ईश्वर दा जप लै तूं नाम।
प्रकाश में ला लै तूं ध्यान, उस ईश्वर दी कर लै कमाई।
जिसने तेरी है बनत बनाई, जिसने तेरी है बनत बनाई।।

संकल्प कुसंगी से बचे रहने के लिए सावधान होकर अजपा जाप द्वारा अपना ध्यान प्रकाश में जोड़े रखने का उद्यम दिखाना है। यह होगा अपनी बनत बनाने वाले ईश्वर की उपासना करते हुए सच की कमाई कमाना।

83

सजनो -
संकल्प झुखता है, इन्सान रोता है ।
प्रसन्नचित्त बने रहने हेतु संकल्प ठीक रखो।
संकल्प स्वच्छ तो दृष्टि कंचन और जिह्वा स्वतन्त्र।

जब संकल्प झुखता है तब इंसान दुखी होकर रोता है इसलिए मुझे सदा प्रसन्नचित्त रहने के लिए संकल्प स्वच्छ रखना है क्योंकि अगर मेरा संकल्प स्वच्छ होगा तो ही दृष्टि कंचन और जिह्वा स्वतंत्र रह पाएगी।

84

रोना कैसे मिटता है, सजनो सुनो-
विचार, सत्य ज़बान, एक दृष्टि, एकता,
एक अवस्था पर स्थिर बने रहकर।
रोना तो अब वर्जित है, झुखना भी तो वर्जित है।

विचार, सतज़बान, एक दृष्टि, एकता, एक अवस्था पर स्थिर बने रहने से ही रोना मिटता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार रोना तो अब वर्जित है, झुखना भी तो वर्जित है।

85

संकल्प कुसंगी को संगी बनाकर
उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर बनाने हेतु
युवा अवस्था की भक्ति और युक्ति अपनाओ।।

युवावस्था की भक्ति जो है समभाव-समदृष्टि की युक्ति अपनाकर उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल, भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर करने हेतु संकल्प कुसंगी को संगी बनाना है।

86

तीन ताप-
आध्यात्मिक - जीवन बनाने हेतु विचार।
आधिभौतिक - शान्ति प्राप्ति हेतु विचार।
आधिदैविक - सब देवताओं को पूजना।

जिसके मन को तीनों ताप सताते हैं वह चाहे कितना ही यत्न करे विश्राम नहीं पा सकता। पहला ताप है आध्यात्मिक यानि आत्मा संबंधी अर्थात् विचार करना कि हमारा जन्म का रोग कैसे मिट सकता है व जीवन किस तरह बन सकता है। यह होता है अपने जीवन से मृत्यु तक के समय के दौरान अपने आप को विचारसंगत आत्मनिरीक्षण द्वारा परिवर्तित करके मोक्ष प्राप्ति के योग्य बनाना। दूसरा ताप है आधिभौतिक यानि विचार करना कि सभी दुखों से छुटकारा पाने के लिए हमें किस तरीके से शांति की प्राप्ति हो सकती है जिससे मनोवांछित पदार्थ मिलने पर भी मन में क्षोभ, चिंता, दुःख आदि घर न करे। आधिदैविक यानि भूत-प्रेत आदि द्वारा प्राप्त होने वाले दुःखों से छुटकारा पाने के लिए सब देवताओं को पूजना, आज यह व्रत रखना-कल वह व्रत रखना। विचार करना कि किस तरह से हमें विश्राम मिल सकता है।

87

तीनों तापों का संतुलन क्रमशः प्रदान करता है-

1. **विचार शब्द - समभाव-समदृष्टि।**
2. **चित्त की शांति - संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म पर स्थिरता।**
3. **विश्राम - वह सुख जो जीव मोक्ष उपरान्त पाता है।**

इन तीनों तापों से छुटकारा तभी प्राप्त हो सकता है जब मैं 'समभाव-समदृष्टि की युक्ति' अनुसार कुशलता से सजन-भाव व्यवहार में लाने के योग्य बन संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म पर स्थिर रह अपने चित्त को शांत रखने में सक्षम हो पाऊँगा। यह होगी मेरे मन की वज्र अवस्था जिस पर ईंट, रोड़ा कोई प्रहार नहीं कर सकेगा यानि मन उपशम होते ही मेरे स्वभावों का टैम्प्रेचर घटना-बढ़ना समाप्त हो जाएगा। यह होगा तीनों तापों का रोग मिटना। यहाँ सब सवालों के हल होते ही जीव जन्म की बाज़ी जीत विश्राम को प्राप्त होगा।

88

तीनों तापों का असंतुलन क्रमशः प्रदान करता है-
1. अवविचार - काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार।
2. चित्त की अशांति - अस्थिरता व असंतोष।
3. फुरना, व्रत-नेम, कर्म काण्ड आदि।

तीनों तापों के टैम्प्रेचर के घटने-बढ़ने के कारण ही हृदय में अविचार यानि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसे विकार उत्पन्न हो इंसान के मन को अशांत व चित्त को अस्थिर कर उसे अधीरता व असंतोष के स्वभाव में ढलने के लिए मजबूर करते हैं। ये विकार ही सब फुरनों के हेतु हैं जिनके प्रभाव से बुद्धि-भ्रम पैदा होता है। इसी नकारात्मक अवस्था से छुटकारा पाने के लिए इंसान बाल अवस्था की भक्ति जैसे व्रत-नेम, कर्म-कांड आदि का सहारा लेता है। वह अज्ञान के कारण यह भूल जाता है कि मन की नित्य शांति प्राप्त करने हेतु बाल अवस्था की भक्ति मिथ्या आधार है जिससे मन में और भटकाव पैदा होता है और शाश्वत शांति प्राप्त नहीं हो सकती।

89

सर्वांगीण एवं सम्पूर्ण स्वस्थता तथा सुख-शांति हेतु
मन-वचन-कर्म में
सम, सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म अपनाओ।

अपनी सर्वांगीण एवं सम्पूर्ण स्वस्थता तथा सुख-शांति के लिए मुझे अपने मन-वचन-कर्म में सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई और धर्म अपनाना है।

90

समभाव अपनाने हेतु सावधान -
ऐसा न हो
संतोष पर काबू पाएँ, पर धैर्य छूट जाए
धैर्य पर काबू पाएँ, पर सच्चाई धर्म छूट जाए।

समभाव अपनाए रखने हेतु हर क्षण सचेत रहना है ताकि कहीं ऐसा न हो जाए कि मैं संतोष पर काबू पाऊँ पर धैर्य छूट जाए और फिर धैर्य पर काबू पाऊँ तो सच्चाई व धर्म छूट जाए और मेरे लिए समभाव नज़रों में कर सजन-भाव धारण करना असंभव हो जाए।

91

सुख-शांतिमय जीवन हेतु-
सम संतोष धैर्य दा पावो सिंगार, सच्चाई धर्म पकड़ो विशाल।
सजनो एकता पकड़ो एकता दिखाओ।
सजनो एकता दा पवे प्रभाव ओए।।

सुख शांतिमय जीवन जीने हेतु मुझे सम, संतोष, धैर्य अनुसार भाव-स्वभाव अपनाने हैं और सच्चाई-धर्म की विशालता को अपने स्वभाव या वृत्ति के अंतर्गत कर इस तरह से एकता पकड़नी व दर्शानी है कि मेरी इस क्रिया का प्रभाव औरों पर भी पड़े।

92

आपसी एकता हेतु-
मन अपना समझा लौ, उखड़े दिल मिला लौ।
इको दिल बना लौ, उखड़े दिल मिला लौ।।

आपसी एकता हेतु मुझे यह बात अच्छी तरह से मन में बिठानी है कि हमारे सबके लिए मिलजुल कर रहना ही उचित है इसलिए अगर हमारे दिलों में मनमुटाव घर कर चुका है तो उखड़े दिल मिलाकर एक दिल हो जाना है।

93

समभाव देखो सजनो, जनचर बनचर।
समभाव देखो जगत जहान।।
ओथे जात पात न अमीरी ग़रीबी ।
एहो दृष्टि सजनो राहवे महान।।

'समभाव-समदृष्टि की युक्ति' अनुसार जनचर, बनचर व जगत जहान को समभाव मान उसे अपने विचार में उतारना है ताकि मेरे हृदय में कभी भी जात-पात या अमीरी-ग़रीबी का भाव या सवाल न पनपे। फिर ध्यान रखना है कि यह महान विचार मेरे ध्यान व देखने की प्रवृत्ति यानि दृष्टि से कभी अलग न हो।

94

समभाव समदृष्टि दा सजनो, दिल में अमल लिआओ।
दिल में अमल लिया के सजनो,
दिल में अमल कमाओ, दिल नाल दिल मिलाओ।।

'समभाव-समदृष्टि की युक्ति' को दिल से अमल में लाकर इस द्वारा सदा अपने अंतःकरण को निर्मल रखते हुए सबके साथ सजन-भाव अनुसार इको दिल बनाकर यानि एकभाव में स्थित रह विचरना है।

95

सम मानो सम जानो,
सम लवो पहचान, समदृष्टि जानो।
सजनो समभाव समदृष्टि नूं धारण करो।
वैरी दुश्मन शत्रु सारे, इक सजन दृष्टि फड़ो।।

पहले सर्व सम मान उससे ध्यान द्वारा परिचित हो सम को ही पहचानने की क्रिया युक्तिसंगत करने के योग्य बनना है। इसी योग्यता द्वारा हम सबको एक सा समझने या देखने वाले समदृष्टा बन समदृष्टि हो सकते हैं। तभी हम सभी वैरी, दुश्मन, शत्रु सबको समभाव-समदृष्टि से धारण कर निर्विकारता से जीवन जीने हेतु सजन-दृष्टि यानि सजन-भाव पर अपनी पकड़ रखने के योग्य बन सकते हैं।

96

सबमें अपने असलियत प्रकाश को देखो।
इस प्रकार बातचीत करने से
मुस्कुराहट आएगी, बदन प्रफुल्लित होगा,
हृदय खिड़ेगा और मुख चमकेगा।

सबमें आत्मीय मूल तत्व को इस तरह से देखना है कि मुझे सर्व एकात्मा का बोध हो जाए। इससे आपसी वार्त्तालाप में मधुरता आएगी, चित्त प्रसन्न रहेगा, बुद्धि विवेकशील होगी, मन में कोई मनोविकार उत्पन्न नहीं होगा और मुख प्रकाश या ज्योति से युक्त होगा। यह अवस्था मेरी आत्मिक उन्नति व यश-कीर्ति की प्राप्ति की प्रतीक होगी।

97

द्वैत छोड़ दो -
न किसी से प्यार कर, न किसी से वैर रख।
दोस्ती ला लै तूं आद दे नाल,
दिलों दुई भाव नूं छड।।

द्वैत छोड़ने के लिए ईश्वर के साथ मित्रता बनाए रखना अनिवार्य है ताकि मैं हृदय से द्वि-भाव का परित्याग कर समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन-भाव इस तरह से धारण करूँ कि मुझे किसी से प्यार या वैर न रहे।

98

ईश्वर कहते हैं -
पंज ज्ञान इन्द्रियाँ पंज कर्म इन्द्रियाँ विच है ख़्याल तुम्हारा।
मनुराज नूं छड के सजनो टप्पा मारो ज्ञान इन्द्रियाँ दा,
पावो स्थान हमारा।।
क्योंकि
सर्गुण निर्गुण सजनो एक दा नज़ारा है
मन-मन्दिर प्रकाश रिहा, प्रकाशे सिरजनहारा है।

जीवों को विषयों का ज्ञान कराने वाली पाँच ज्ञानेन्द्रियों व काम करने वाली पाँच कर्म इन्द्रियों के मध्य में स्थित ख़्याल को अफुर अवस्था में साधे रखने हेतु मनुराज से बंधनमुक्त कर पाँच ज्ञानेन्द्रियों को फाँद कर अपने असली पवित्र घर में ठहराना है। यह होगा ख़्याल का ईश्वर के संग बने रहना। मुझे यह भी समझ आ गया है कि सर्गुण-निर्गुण एक ही जोत का नज़ारा है जो मेरे मन-मंदिर में प्रकाश रहा है। यही सृष्टि करने वाला परमेश्वर है।

99

यही सत्य है-
चमत्कार एक है, एक ही विशेष है,
हर अन्दर प्रवेश ओ सजनो एक है,
चमत्कार एक है सजनो चमत्कार एक है।

चमत्कार एक है और उससे कुछ अधिक या उसके अतिरिक्त विचित्र सार यानि दृढ़ता, सुंदरता, शक्ति व उत्तमता किसी और में नहीं है। वही एक, कुदरत के

विशिष्ट नियमानुसार हर प्राणी के हृदय में सुशोभित है जो अपने आप को सिद्ध करते हुए हर प्राणी को चमत्कार एक है का सत्य मान लेने की सलाह दे रहा है।

100

हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई
हम एक हैं, हम एक हैं,
एक दा प्रवेश, ओ हम एक हैं।
मिल वर्तो, मिल वर्तो, ओ हम एक हैं।।

हिन्दु, मुस्लिम, सिख व ईसाई सभी मनुष्यों के हृदय में उस एक जोत का ही प्रवेश है इसलिए हम सब एक हैं। हमें आपस में सुलह और संधि का व्यवहार कर मिलजुल कर रहना चाहिए। हम में किसी कारण भी विरोध या द्वेष नहीं उपजना चाहिए।

101

आओ जी - जी आयाँ नूं।
परमधाम है घर हमारा,
हम परमधाम में रहते हैं
ओथे रूप-रेखा नहीं रंग कोई।

अंततः मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई है कि जब कोई सुरत अपने घर पहुँचती है तो उसका 'आओ जी-जी आयां नू' जैसे आदर सूचक शब्द के साथ स्वागत करते हुए परमेश्वर स्वयं बतलाते हैं कि हम जहाँ रहते हैं उस घर को परमधाम कहते हैं। वहाँ रूप, रंग, रेखा कुछ भी नहीं हैं।

स्थान : ध्यान-कक्ष की परिसीमा के भीतर स्थित प्रथम स्तंभ-शंख

अब उत्साहपूर्ण होकर ध्यान-कक्ष की परिसीमा के भीतर प्रवेश करो। इस परिसीमा के भीतर सर्वप्रथम आप देख रहे हैं चार स्तम्भ जिन पर शंख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित हैं।

देखिए प्रथम स्तम्भ। इस पर स्थित है शंख। शंख की महत्ता दर्शाते हुए इस स्तंभ पर नीचे लिखा है कि-

"धर्म" ग्रन्थों के अनुसार शंख आद्य पवित्र ध्वनि का सृजक है। इस पावन ध्वनि को सुनाद या महानाद भी कहते हैं। यही नाद पाँच तत्वों तथा सृष्टि का उत्पादक है। यह ऐसा संचार वाद्य है जो मात्र वायु से अनहद नाद द्वारा धारक को हर आधि-व्याधि, अमंगल एवं

विपत्ति से सुरक्षित रखता है। यह सुख, शांति, एकता, एक अवस्था, प्रफुल्लता तथा सौभाग्य का प्रतीक है। इसके माध्यम से मानव की ऊर्जा, नाद-स्रष्टा के साथ एकाकार होकर चहुँ ओर व्याप्त हो जाती है और उसे मोक्ष-प्राप्ति होती है। शंख शुभ अवसरों पर तथा युद्ध के आरम्भ, समाप्ति व विजय प्राप्ति पर बजाया जाता है।"

इसके अतिरिक्त यह प्रथम स्तम्भ सृष्टि

रचना के आधारभूत पंचतत्वों यथा आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी को भी प्रदर्शित कर रहा है। निःसंदेह सृष्टि रचना में इन सभी तत्वों की भूमिका अनिवार्य है क्योंकि ये तत्व ही जीवात्मा का सर्वोत्तम आश्रय हैं तथा इनसे निर्मित देह में स्थित जीव अपने परम प्रयोजन को सिद्ध करता है। इस प्रकार यह स्तंभ दर्शा रहा है कि यद्यपि प्रयोजन सिद्धि के लिए इन पाँचों तत्वों का संयोजन व विलय होता रहता है तथापि इनसे निर्मित नश्वर देह को बन्धन, राग और भोग का हेतु न मानकर मानव को सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में आध्यात्मिक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से वर्णित इसकी उपयोगिता को स्वीकारते हुए सर्वोत्कृष्ट ढंग से इसके प्रयोग की कला को समझना चाहिए व तदनुरूप ही जीवनयापन करना चाहिए क्योंकि तभी वह देह आसक्ति से निवृत्त हो विरक्ति द्वारा इसके प्रयोजन को सार्थक कर इन पंच तत्वों से विमुक्त हो पाएगा यानि आवागमन के चक्र से मुक्ति पा जाएगा।

स्थान : ध्यान-कक्ष की परिसीमा के भीतर स्थित द्वितीय स्तंभ-चक्र

अब देखिए द्वितीय स्तम्भ। इस पर स्थित है चक्र। चक्र की महत्ता दर्शाते हुए इस स्तंभ पर नीचे लिखा है कि-

"धर्म ग्रन्थों के अनुसार चक्र रूपी अस्त्र, ईश्वरीय आदेश पर जगत कल्याण और सत्य स्थापना हेतु अहंकारी और भ्रामक शक्तियों से सजन पुरुषों की सुरक्षा का माध्यम है।

यह एक आश्चर्यजनक, गुप्त, अप्राकृतिक और आध्यात्मिक दिव्यास्त्र है जो सब कुछ ध्वंस करने की सामर्थ्य रखता है। इसकी परिधि की धार बहुत तीक्ष्ण होती है। इसकी कांति-दीप्ति ज्ञानोदय का प्रतीक है। इसका उद्‌भव दुष्ट, पापी, द्वेषपूर्ण, कुकर्मी, अधर्मी व आसुरी वृत्ति के लोगों के विनाश के लिए हुआ। यह किसी मनोरथ की सिद्धि हेतु चलाया जाता है तथा तीव्र गति से विरोधी का पीछा करता हुआ उसका विध्वंस कर

यथास्थान लौट आता है। यह ब्रह्मा के सृष्टि-चक्र को भी दर्शाता है और सृष्टि के संरक्षण हेतु पुनरावलोकन कर स्रष्टा को जनाता है।"

इसके अतिरिक्त यह द्वितीय स्तम्भ परोपकारता, निष्कामता, समभाव-समदृष्टि, सजन-भाव और विचार की महत्ता को इस प्रकार प्रदर्शित कर रहा है-

परोपकारता - यह निष्कामतापूर्वक दूसरों की भलाई या हित करने का भाव है। ऐसा व्यक्ति प्रत्येक जीव की भलाई के उद्देश्य को सर्वोपरि रख अपने हित-अहित की भी चिंता नहीं करता और इसलिए अकर्त्ता-भाव से कर्म करता हुआ अपना जीवन सफल बना लेता है।

निष्कामता - वह सद्‌गुण जो मानव को हर प्रकार की कामना, आसक्ति या इच्छा से विमुक्त रह कर्म करने की प्रेरणा प्रदान करे ताकि उसका चित्त विशुद्ध बना रहे व मन शांत रहे।

समभाव-समदृष्टि - समभाव-समदृष्टि जो कि दो शब्द का संयोजन है। इसमें समभाव का अर्थ है, हर परिस्थिति में अपने मन-मस्तिष्क को संतुलित अवस्था में बनाए रखने की शक्ति तथा समदृष्टि का अर्थ है सबको सम या समान दृष्टि से देखने की अवस्था।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार समभाव प्राणी का मूल या प्रधान गुण है जो उसमें सदा रहता है तथा उसकी प्रधान एवं समान प्रवृत्ति है। यह यथार्थता एवं सम्पूर्णता का भाव है तथा मनुष्य के सद्‌गुण सम्पन्न होने की सर्वोत्तम स्थिति है। यह मनुष्य की कभी न छूटने वाली विशेषता है तथा इसके प्रभाव से वह अपना संतुलन कभी नहीं खोता और उसके तीनों ताप सदा समान बने रहते हैं। यही नहीं समभाव द्वारा उसकी बुद्धि विवेकशील एवं निश्चयात्मक बनी रहती है और उसकी प्रज्ञा एक ही विषय पर केन्द्रित रहती है। इस प्रकार ऐसा मनुष्य अपने असलियत स्वरूप में स्थित रह सबके प्रति सहानुभूति रखते हुए मन,

वचन, कर्म से समान आचरण करता है। उसमें अडोलता एवं निश्छलता जैसे दिव्य गुण स्वतः आ जाते हैं और वह सदाचारी, सत्यनिष्ठ और धर्मपरायण बन अंततः विश्राम पा जाता है।

सजन-भाव - हृदय में एकता और एक अवस्था के प्रतीक के रूप में उदित होने वाला ऐसा सात्विक भाव जो मानव को भगवान की सर्वव्यापकता जना दे। निःसंदेह इस भाव को अपनाने से मानव की वृत्ति, स्मृति, बुद्धि, वाणी व भाव-स्वभाव स्वतः निर्मल हो जाते हैं और वह आत्मिक बल की प्राप्ति कर सहज निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

विचार- यह विवेक और परीक्षण द्वारा किसी व्यक्ति, वस्तु या बात के सब अंग देखकर निश्चय करने की क्रिया है। विचार को अपनाने वाला विवेकशील हो जाता है और अपने भले-बुरे व अच्छे-बुरे की पहचान करने वाला विशेष बुद्धि कहलाता है।

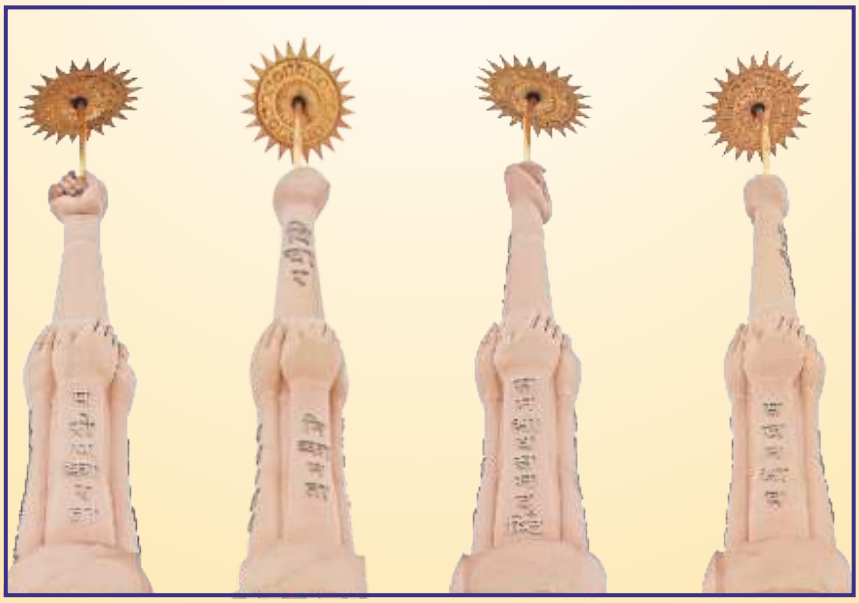

स्थान : ध्यान-कक्ष की परिसीमा के भीतर स्थित तृतीय स्तंभ - गदा

अब देखिए तृतीय स्तंभ। इस पर स्थित है गदा। इस स्तंभ पर नीचे गदा की महत्ता दर्शाते हुए लिखा है कि-

"धर्म ग्रन्थों के अनुसार गदा एक आदियुगीन शक्ति है जो धारक के व्यक्तिगत शारीरिक बल, मानसिक एवं आध्यात्मिक सामर्थ्य का प्रतीक होती है।

यह अस्त्र प्राकृतिक सिद्धान्त, आदेश-प्रणाली, आचार-व्यवस्था व धार्मिक-पद्धति भंग करने वाले, हीन कर्म करने वाले तथा मतिभ्रम में फँसे लोगों की विनाशक तथा सत्पुरुषों की सुरक्षा हेतु निमित्त है। यह शांति-शक्ति का ऐसा हथियार है जो धारक को तीनों तापों, पाँचों विकारों तथा मौत के भय से सुरक्षित रखने हेतु ढाल का कार्य करती है एवं उसके हृदय में शांति स्थापित कर उसे विश्राम अवस्था प्रदान करती है।"

इसके अतिरिक्त यह तृतीय स्तम्भ दर्शाता है कि मानवता के मूलाधार अर्थात् संतोष और धैर्य जैसे महान गुणों से श्रृंगारित होकर ही एक मानव सच्चाई और धर्म के मार्ग पर चलने में समर्थ हो सकता है और अपने निज स्वरूप में स्थित रह सदा सम अवस्था में बना रह सकता है।

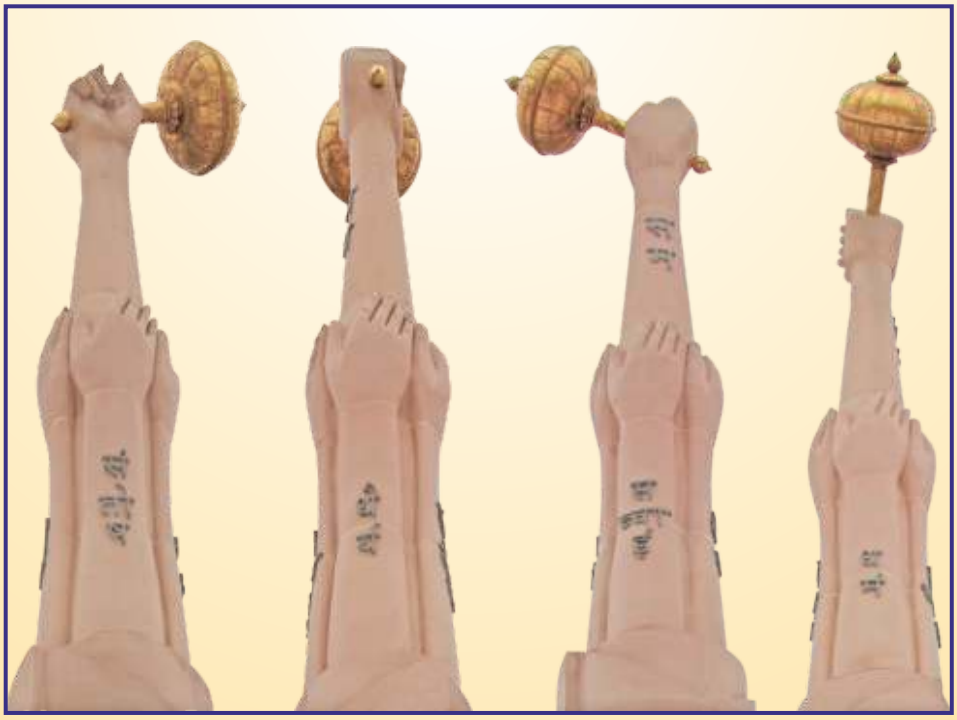

स्थान : ध्यान-कक्ष की परिसीमा के भीतर स्थित - चतुर्थ स्तंभ पद्म

अब देखिए चतुर्थ स्तम्भ। इस पर स्थित है पद्म। इस स्तंभ पर नीचे पद्म की महत्ता दर्शाते हुए लिखा है कि-

"धर्म ग्रन्थों के अनुसार पद्म ब्रह्माण्ड का धर्मसार और मुक्ति का प्रतीक है। यह धारक को समाधि अवस्था और ब्रह्माण्ड रचना की सत्यता व यथार्थता जनाता है। यही विश्व का ज्ञानदाता और उसके संचालन की आचार संहिता का स्रोत है। यह पवित्रता और अति सुंदरता की मिसाल है। यह धारक के ख़्याल की स्वच्छता, दृष्टि की

कंचनता, जिह्वा की स्वतन्त्रता, विरक्ति, निष्कामता और अकर्त्ताभाव का द्योतक है।"

इसके अतिरिक्त यह चतुर्थ स्तम्भ संकल्प-स्वच्छ, दृष्टि-कंचन, जिह्वा-स्वतन्त्र, एक दृष्टि एक दर्शन व ब्रह्म की महत्ता को भी इस प्रकार दर्शा रहा है।

संकल्प स्वच्छ अर्थात् किसी काम को करते समय अपना विचार या इरादा पवित्र व निष्कपट रखने का संदेश।

दृष्टि कंचन अर्थात् अपनी उस शक्ति या वृत्ति को स्वस्थ व स्वच्छ रखने का संदेश जिससे मनुष्य सब चीज़ें देखते हैं।

जिह्वा स्वतन्त्र यानि जिह्वा द्वारा शब्दों का उच्चारण करते समय उसे हर प्रकार के दुर्गुण व आवेश जैसे कटु वचन, गाली-गलौज, क्रोध इत्यादि से विमुक्त रखने का संदेश।

एक दृष्टि-एक दर्शन अर्थात् द्वि-द्वेष के भाव की समाप्ति द्वारा तूं-मैं का, दृश्य-दृष्टा का फ़रक मिटाकर एक-आत्मभाव में स्थित होने की स्थिति जिससे जीव को तत्वज्ञान अर्थात ब्रह्म, आत्मा और सृष्टि के संबंध का यथार्थ ज्ञान हो जाए।

ब्रह्म यानि वह नित्य चेतनसत्ता जो जगत का मूल कारण और सत्-चित-आनंदस्वरूप मानी गई है तथा जिसके अतिरिक्त जो प्रतीत हो रहा है वह सब असत्य और मिथ्या है।

इस प्रकार सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार इस स्तंभ से स्पष्ट हो रहा है कि एक मानव आत्मज्ञान प्राप्त करके ही अपने संकल्प को स्वच्छ, दृष्टि को कंचन और जिह्वा को स्वतन्त्र करने में सफल हो सकता है। फिर उसी सत्य आत्मज्ञान द्वारा वह एक दृष्टि एक दर्शन हो, ब्रह्म क्या है इस सत्य को जान सकता है।

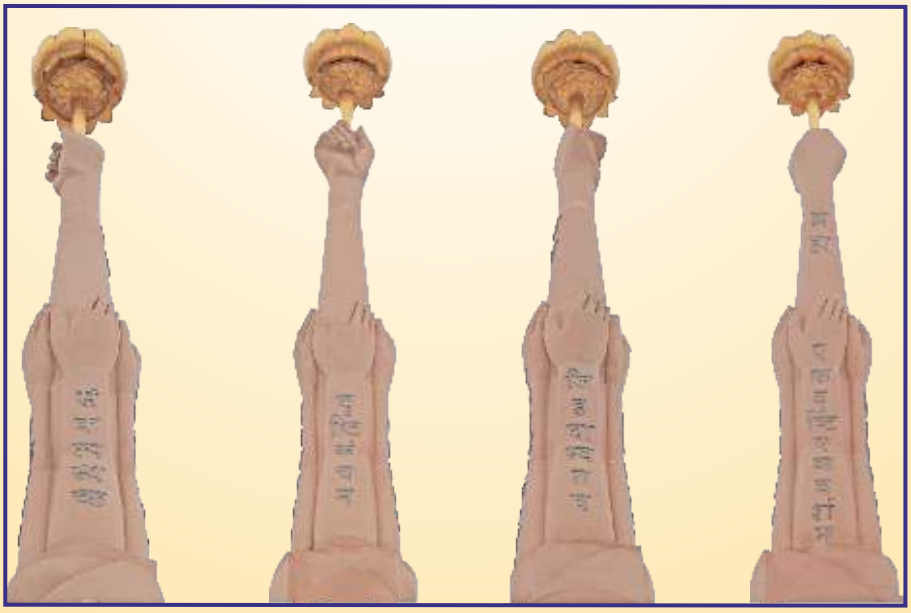

स्थान : ध्यान-कक्ष के मुख्य द्वार पर

समभाव-समदृष्टि के स्कूल यानि ध्यान-कक्ष के बाहर स्थित इन चार स्तम्भों का अद्‌भुत नज़ारा देखने के बाद अब आप पहुँच चुके हैं ध्यान-कक्ष के मुख्य द्वार पर।

यहाँ आपका 'आओ जी-जी आयां नूं' द्वारा स्वागत करते हुए आपको जनाया जा रहा है कि अब आप समभाव-समदृष्टि के स्कूल में प्रवेश करने जा रहे हैं जहाँ आपको **'शब्द है गुरु, शरीर नहीं है'** का चलन मानते हुए इस स्कूल में पढ़ाई व गुढ़ाई हेतु सीस अर्पण करना होगा।

सीस अर्पण

सीस अर्पण का अर्थ है- बगैर किसी दबाव के व अपनी ख़ुशी से अपने आप को समर्पित करना अर्थात् अपनी आहुति देना, अर्पित होना, कुरबान होना, जान लुटाना, जीवन देना। इस प्रकार यह शारीरिक और संसारी अभिमान, अहंकार, अकड़, धृष्टता, प्रतिष्ठा, अवज्ञा, स्वीकृति-अस्वीकृति, मान-अपमान, इच्छा-अनिच्छा, रोना-झुखना, राग-द्वेष, वैर-विरोध, ज्ञान-अज्ञान इत्यादि का त्याग कर उनकी समाप्ति या अन्त करना है। यह समर्पण आदरपूर्वक धर्मभाव से, श्रद्धा से जो हमारा महामन्त्र है "साडा है सजन राम, राम है कुल जहान" का अर्थ समझते हुए कि 'ईश्वर हमारा मित्र, प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो और वैसे ही गुण अपनाओ' उसका मन में सात बार अफुरता से अजपा जाप करते हुए करना है। याद रखो यह क्रिया असत्य को छोड़ने की व सत्य को धारने की क्रिया है। इसलिए इसे करने से पूर्व हमें यह समझ लेना है कि अब मुझे उस ईश्वर के हुक्म को सर्वोपरि मान अंगीकार करना है और केवल उसको ही धारना है व उसके हर हुक्म की पालना हेतु अपना तन-मन-धन सब वार देना है अर्थात् किसी की भी परवाह न करते हुए अपने प्राण तक न्योछावार करने से नहीं सँकुचाना।

अतः अब हमें उस ईश्वर के हुक्म की मननकारी हेतु सदैव हाँ-जी करना है और सबके साथ जी-जी का व्यवहार करना है ताकि हमारे मन में संकल्प-विकल्प की तरंगें उठनी बंद हो जाएँ और यह हर तर्क-वितर्क त्यागकर शांत व एकाग्र हो जाए। यही नहीं इस समर्पण के दौरान हम ने अनेकानेक ज्ञान स्रोत होते हुए भी अब तक अपनी श्रेष्ठता, विद्वता, गुणवत्ता, बलवत्ता, धनवत्ता, बुद्धिमत्ता और ज्ञानवत्ता मे हुई अवनति के कारण जीवनयापन के दौरान अपने मूलधर्म के विपरीत आचार, विचार व व्यवहार अपनाकर नित्य प्रति मिलने वाली नाकामयाबी व निराशा को सजन पुरुष बनने हेतु पराजय के रूप में स्वीकारना है। इस क्रिया द्वारा हमें अपने-अपने दिलो-दिमाग़ पर छाए हुए अज्ञान का बोध होगा और पुनः सत्यज्ञान प्राप्ति द्वारा उन्नति कर अपने लक्ष्य यानि मूल धर्म को जानने के प्रति रुचि पैदा होगी। याद रखो इसे जानने के उपरांत ही हम तद्नुकूल जीवन व्यतीत करते हुए स्वधर्म की विजय पताका फहरा सकेंगे और हर द्वन्द्व, प्रतिरोध व पराधीनता से मुक्त हो संतोषी व धैर्यवान कहला पाएँगे। यही सच्चाई-धर्म की राह पर निरंतर आगे बढ़ते रहने के लिए आवश्यक है।

हम कह सकते हैं यह स्वार्थ या सांसारिक सुख को त्यागना यानि सांसारिक विषयों और पदार्थों को छोड़ना होगा। इस विरक्ति के उपरांत ही हमारे लिए निष्काम होकर निर्भयता पूर्वक परोपकार तथा अन्य शुभ कर्म करना सहज हो पाएगा। इस प्रकार जब विषयवासना या सुख उपभोग आदि से हमारा किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं रहेगा तभी जीव इस जगत में तृप्त व निर्लिप्त विचरते हुए मोक्ष का अधिकारी बन सकेगा।

इसे अपनी भलाई हेतु निजी कार्य समझकर करना है। याद रहे आत्मसमर्पण द्वारा ही हम अपने मन पर अधिकार रखने वाले बन यानि मनमत से ऊपर उठकर आत्मज्ञान द्वारा आत्मा में लीन होने का सुख अनुभव कर सकते हैं। तभी हम सात्विक भावों व सात्विक आहार का सेवन कर अपनी शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता को सुदृढ़ रख सकते हैं और आत्मविश्वासपूर्वक अपने

आत्मिक बल, ज्ञान, बुद्धि व पराक्रम द्वारा सब कार्य करने के योग्य बन अपने आप को यथार्थता से सिद्ध कर सकते हैं। इस प्रकार तब हम सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित **'समभाव नज़रों में कर सजन वृत्ति फड़ियो, सजन भाव नज़रों में कर के सजनों, सजन भाव प्रकृति में लियाईयो'** की युक्ति को पूर्णतः प्रवान करने के योग्य बन सकते हैं और फिर यश-कीर्ति के पात्र बन सजन-पुरुष कहला सकते हैं। यहाँ सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार यह भी जान लो कि सजन क्या है? सजनों सुनो- जो मन मन्दिर सो ही महाराज का रूप सारे जग अन्दर, जनचर, बनचर, जड़-चेतन एक ही रूप। इस एकरूपता को आत्मसात् करने के पश्चात् ही हम उस सर्वव्यापक ईश्वर 'साजन' को सहजता से समझ सकते हैं और कह सकते हैं कि सजनता ही मेरा गहना है, सिंगार है। यह सिंगार पहनकर मैं जान गया हूँ कि 'सजन है आत्मा, श्री साजन है परमात्मा'। यह प्रतीक होगा हमारे ख़्याल की स्वच्छता, दृष्टि की कंचनता व जिह्वा की स्वतंत्रता का। तभी हम उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल कहलाने योग्य बन सकेंगे और एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन यानि अपनी असलियत की पहचान कर सकेंगे। यह होगा 'जेहड़ा है मन-मन्दिर प्रकाश, ओही असलियत ज्योति स्वरूप है मेरा अपना आप' के सत्य का बोध होना।

इस सत्य का बोध होते ही अनायास सजन की सुरत कह उठती है कि हे साजन ! यही तो सत्य है कि आप ही मेरे प्यारे मित्र व स्वामी हैं और आपके बिना मैं अन्य किसी को न जानती हूँ न मानती हूँ क्योंकि आप ही सबसे ऊँचे, अथाह, अपार एवं अमूल्य हैं और मुझे अपने में मिला लेने में समर्थ हैं इसलिए मैं आप पर बलिहार जाती हूँ और अपने उद्धार हेतु अपना मन आपके हवाले करती हूँ। हे प्रभु ! मेरी विनती स्वीकार करो जी। मेरी विनती स्वीकार करो जी ताकि मै दिव्य दृष्टि का सबक ले त्रिकालदर्शी बन इस जगत में विचरते हुए 'विचार ईश्वर है अपना आप' के सत्य पर दृढ़ रह, अपना असलियत ब्रह्म स्वरूप जान सकूँ।

इसी ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हेतु अब आप ध्यान-कक्ष अर्थात् समभाव-समदृष्टि के स्कूल के समक्ष खड़े हैं। इस स्कूल में प्रवेश से पूर्व आइए जानते हैं कि इस विद्यालय की अद्वितीय महत्ता क्या है?

समभाव-समदृष्टि के स्कूल की अद्वितीय महत्ता

जान लो कि यह ध्यान-कक्ष समभाव-समदृष्टि की विद्या प्रदान करने वाले सर्वश्रेष्ठ विद्यालय का परिचायक है। इस संदर्भ में समभाव-समदृष्टि की युक्ति यानि सजन-भाव की पढ़ाई अपने आप में ऐसी विद्या है जिसके अंतर्गत निष्काम-भाव से मनुष्यों को मोक्ष प्राप्ति का ज्ञान-विज्ञान प्रदान करने का विधान है। इस विधान अनुरूप आरम्भिक काल में मनुष्यों को सद्मार्ग पर आजीवन स्थिर बनाए रखने के लिए समभाव-समदृष्टि की युक्ति में प्रवीण विद्वानों द्वारा ऐसे विद्यालयों के स्थापना की समुचित व्यवस्था की गई। यह सबसे उत्तम परोपकार प्रवृत्ति कहलाई जिसमें 'तूं-मैं' या 'गुरु-चेले' का भाव पनपने का सवाल ही पैदा नहीं होता था। इसी कारण उस समयकाल में हर मनुष्य के हृदय में समभाव की प्रधानता थी और वह समदर्शी कहलाया। वे विद्वान जानते थे कि किसी अन्य विधान के अनुसार कोरा ज्ञान प्रदान करना मनुष्यों के अन्दर अहंकार वृत्ति जाग्रत करना है।

इस संदर्भ में जब से स्वार्थ-सिद्धि हेतु आत्मज्ञान जैसा पवित्र ज्ञान प्रदान करने वाले विद्यालयों की स्थापना के स्थान पर महज अपरा विद्या जैसी अन्य लौकिक व पदार्थ विद्याओं का ज्ञान प्रदान करने वाले विद्यालयों की स्थापना व संचालन द्वारा मिथ्या ज्ञान प्रदान करने का सिलसिला आरम्भ हुआ तब से परा विद्या यानि ब्रह्मज्ञान की शिक्षा के अभाव के कारण मनुष्य नैतिक पतन के गर्त में जाना आरम्भ हो गया। आज विडम्बना यह है कि अब अधिकतर इंसानों के दिलों में आत्मविद्या के मुख्य स्रोतों यथा चार वेद, छः शास्त्र, पुराण आदि में वर्णित पवित्र ज्ञान की प्राप्ति के प्रति रुचि ही नहीं रही। यही कारण है कि आज

अविद्या से ग्रसित हर इंसान का पीड़ित दिल व दिमाग़ सत्य से विमुख हो भाँति-भाँति के कर्मकांडों, आडम्बरों आदि जैसे निकृष्ट कर्मों में जा फँसा है और अचेतन हो वह जड़ बुद्धि किसी विषय को पूरी तरह से समझने या व्यक्त करने में समर्थ नहीं रहा। स्पष्ट है कि मनमत पर चलने के कारण उसमें विनय का अभाव हो चुका है और उसकी यह ढिठाई व उद्दंडता उसे हर कर्म विधि के विरुद्ध करने के लिए मजबूर कर रही है। यही पथभ्रष्टता उसके दुराचारी और भ्रष्टाचारी होने का कारण है। इस प्रकार अविद्या के प्रभाव से हालात यहाँ तक बिगड़ चुके हैं कि मानव अत्याचारी हो आज किसी को सताने व नीच कर्म करने से भी नहीं सकुचाता। यह है सत्य से विमुख हो झूठ और अधर्म का रास्ता अपनाना जिस पर चलते हुए उसे रोने-झुखने के सिवाय कुछ भी प्राप्त नहीं होता अर्थात् वह ख़ुद रोता है और सबको रुलाने का पाप कमाता है। इस तरह अपने साथ वह जो अनर्थ कर रहा है उसे समझ ही नहीं आ रहा। उसकी यह अक्षमता उसका इन्द्रियों व संस्कारों के दोषों से उत्पन्न दुष्ट ज्ञान में स्वाभाविक रूप से फँसा होना जनाती है।

यहाँ समझने की बात यह है कि ज्ञान ही जब तर्क का विषय बन जाता है तो इससे यह साबित होता है कि मनुष्य के हृदय से आत्मिक ज्ञान का अभाव हो गया है और धीरे-धीरे वह अपनी यथार्थता यानि अपने सत्य से अपरिचित हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में एक इंसान आत्मीयता से कैसे विचर सकता है?

ऐसा होने का मुख्य कारण है आज विद्या प्रदान करने वालों का अपने मूल धर्म को भूल स्वार्थी हो जाना अर्थात् खुद अविद्या का शिकार हो अपनी स्वेच्छानुसार बिना किसी विधि-विधान के उसी प्रकार का ज्ञान-अज्ञान प्रदान करने के चक्कर में फँस जाना। मुख्यतः इसी कारण मनुष्य का मन अब सदैव अशांत रहने लगा है और असंतोष ने उसका धैर्य तोड़ उसे अधीर बना दिया है। इसीलिए वह चाहते हुए भी सच्चाई-धर्म का रास्ता अपनाने में असफल हो छल-कपट का स्वभाव अपनाकर कष्ट-क्लेश भोग रहा है।

यहाँ याद रखने की बात है कि केवल समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन-भाव अपनाने की विद्या द्वारा ही एक मनुष्य की अक्ल आजीवन टिकाणे रह सकती है और वह उच्च बुद्धि उच्च ख़्याल हो एकभाव में स्थित रह बिना किसी त्रुटि के मन-वचन-कर्म द्वारा अपना यथार्थ जना सकता है।

इस विषय में जान लो कि मोक्ष प्राप्ति ही एक मानव का मुख्य जीवन लक्ष्य होता है। समभाव-समदृष्टि के स्कूल में इस हेतु शिक्षा आदि के द्वारा समभाव-समदृष्टि की विद्या प्रदान कर आपको इसी परम-पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए तैयार किया जाएगा। इस प्रकार इस विद्या द्वारा आप हृदय में विराजमान अपनी आत्मा में परमात्मा की विद्यमानता का अनुभव कर सर्वज्ञ ईश्वर को जान सकेंगे और मानव-धर्म के अनुकूल मानवीय आचार-विचार अपनाने में पारंगत हो अच्छी प्रकृति में ढल सकेंगे। तात्पर्य यह है कि तब आप जो भी करेंगे वह विधि के विचार से ठीक होगा और आप द्वारा कोई भी शास्त्र विरुद्ध विधिहीन अनिष्ट कार्य यानि कुकर्म-अधर्म नहीं हो सकेगा।

यही नहीं प्रत्येक मानव इस विद्या का भाव विचारपूर्वक अपने आचार व व्यवहार में उतार सके और इस क्रिया द्वारा औरों को उसी भाव के अनुरूप ढलने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु ऐसा आदर्श स्थापित कर सके जिस द्वारा उसको इस भाव को अपनाना सहज प्रतीत हो, इस हेतु सर्वहितकारी इस शिक्षा का आगामी पीढ़ियों में प्रसार करने की योग्यता भी उसमें भरी जाएगी। इस प्रकार विद्या प्राप्त कर वह स्नातक औरों को भी मोक्ष के मार्ग पर अग्रसर होने का विधिवत् ज्ञान विज्ञान प्रदान कर सकेगा। यह होगा स्वयं द्वारा कमाया हुआ विद्या रूपी धन आगे बाँटना। यही तो ऐसे विद्वान द्वारा सबसे उत्तम परोपकार करने का प्रतीक होता है। याद रखो विद्या धन में किसी का हिस्सा नहीं लग सकता।

अतः इस विद्या द्वारा आपकी बुद्धि को शरीर, जीव, जगत और ब्रह्म के प्रति प्रकाशमान कर कलियुग से सतयुग की ओर प्रस्थान करने का रास्ता दर्शाया जाएगा ताकि मौत का भय भी आपको न सता सके और आप अपने आपको

बेख़ौफ़-बेख़तरा महसूस करते हुए अपनी जीवन-यात्रा निर्विघ्न समाप्त कर आनंदपूर्वक अपने सच्चे घर पहुँच जाओ। यह होगा आपकी सुरत को मोक्ष हेतु आवश्यक विद्या धन कमाने में पारंगत कर शब्द के संग जोड़ने के योग्य बनाना व अपने सच्चे शौह के घर भेजना ताकि वह मिथ्या जगत रूपी कच का राज छोड़ उस अटल सुहाग के साथ सच का राज मान सके।

यहाँ हम स्वीकारते हैं कि निःसंदेह लोक मर्यादा को समझने के लिए लौकिक ज्ञान द्वारा लोकाचार अर्थात् लौकिक व्यवहार को जानना आवश्यक होता है परन्तु इस संदर्भ में यह भी याद रखने की बात होती है कि संसार का हर विषय व वस्तु संकल्पों का भंडार है। इससे जुड़ने का अर्थ है जीवन के यथार्थ का छूट जाना।

अतः इस अनुरूप किसी भी विषय का ज्ञान प्राप्त कर उसको ग्रहण करने से पूर्व उसके गुण-अवगुण की परख कर लेनी चाहिए अर्थात् भली-भाँति जाँच-तोल कर उसकी सत्यता को समझ लेना चाहिए ताकि स्पष्टता बनी रहे। अन्यथा ख़्याल उन विषयों में गलतान हो उनके रस के सेवन में फँस जाता है और उससे परमार्थ छूट जाता है। यह होता है भौ-भरम, संशय-कर्म, संसारी झगड़ों व संयोग-वियोग द्वारा सोग-रोग व मन में अतृप्ति का भाव उत्पन्न होना और संकट व दुख के कारण मौत का भय उत्पन्न हो जाना।

अतः अब जब आपने समभाव-समदृष्टि की विद्या द्वारा एक अच्छा मानव बनकर अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय ले लिया है तो आओ समभाव-समदृष्टि के स्कूल में प्रवेश करने से पूर्व श्रद्धापूर्वक उस ईश्वर के आगे नमन करते हुए निम्नलिखित प्रार्थना करें -

'शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी हरि ओ३म् नमो नारायण निमश्कारनिंग निमश्कारनिंग निमश्कारनिंग'

और यह जयकारा बोलते हुए अन्दर प्रवेश करें -

'सतवस्तु के वाली शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी, श्री साजन जी की जय'

स्थान : ध्यान-कक्ष की ओर जाते हुए रास्ते पर नीचे संसार समुद्र (वॉटर बॉडी)

अब ध्यान-कक्ष, जो सतयुग की पहचान है व मानवता का स्वाभिमान है उसकी ओर जाते हुए रास्ते पर खड़े रह आप इसके चारों ओर फैले मायावी संसार समुद्र को झाँककर इस तरह से देखो कि उसका आकर्षण आपको इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल में प्रवेश करने से पहले ही बंधनमान न कर ले।

इस हेतु सर्वप्रथम जानो कि संसार क्या है?

संसार का अर्थ है जगत, मृतलोक, आवागमन, मायाजाल व जो निरंतर एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाता रहे। संसारमंडल को भूमंडल कहते हैं जहाँ प्रवेश करने का मार्ग स्त्रियों की जननेंद्रिय है। इस संदर्भ में कामदेव संसार को

उपदेश देने वाला माना गया है। यही तो स्त्री-पुरुष को संयोग की प्रेरणा दे, उनके अन्दर संभोग की इच्छा पैदा करता है, जिससे इन्द्रियों की अपने-अपने विषयों की ओर प्रवृत्ति होती है। इसी प्रवृत्ति के कारण इन्द्रियनिग्रह करना कठिन हो जाता है और आत्मा, बुद्धि, मानस व शरीर के संगठित रूप से कार्य करने का क्रम ही उल्टा हो जाता है। तभी तो जो जीव अपने जीवनकाल में अपनी उद्देश्य पूर्त्ति नहीं कर पाते, उन जीवों के लिए बार-बार जन्म लेने की परंपरा है। इसी को संसार चक्र कहते हैं। इस संसार पथ पर जीवनयापन या निर्वाह कर, कोई विरला ही पराक्रमी संसार सारथि, जो इसको दुःखमय समझता है और उसमें उलझता नहीं, वह इस संसार रूपी सागर को पार कर, मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

इसके विपरीत इस संसार से संधि कर इससे संबंध रखने वाला, चाहे वह संधि जन्म या विवाह व संस्कार के कारण बने, लोक व्यवहार में कुशल होते हुए भी आजीवन संसारी झगड़ों में फँसा रहता है। इससे पता चलता है कि इस संसार की सुन्दरता एक मानव को कामुक, धूर्त्त तथा स्वार्थी बना भोगविलास में अपना सर्वस्व लुटा देने के लिए प्रेरित करती है। फलस्वरूप वह बार-बार जन्म ग्रहण करता है।

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि परमेश्वर ही ओंकार शब्द के माध्यम से एक ऐसे बाँध की भूमिका निभाते हैं जो हमारे हृदय में जगत के प्रभाव को रोके रखने में अपने आप में सक्षम होता है। हृदय में ऐसा शांत व आनंदमय वातावरण हमारे हर अवयव को निर्मल व स्वस्थ बनाए रखने का अचूक साधन सिद्ध होता है और जीव अपनी मर्यादा में बने रह सहजता से इस संसार में विचरते हुए अपने सुकर्मों के बलबूते पर भवसागर पार कर जाता है।

जहाँ जगत के पालक व रक्षक परमेश्वर हैं वहाँ इस समस्त संसार को चलाने वाली शक्ति को लक्ष्मी के नाम से जाना जाता है। लक्ष्मी ही अधिष्ठात्री है जो विष्णु भगवान की पत्नी मानी जाती है। जिस किसी हृदय में लक्ष्मी का भाव या धर्म घर कर जाता है वह धन-संपत्ति यानि ऐश्वर्य की ओर झुकाव होने के कारण विलासी यानि सुख भोग में लगा रहने वाला कामी बन परस्पर अनुराग सूचक चेष्टाएँ करता है। तभी तो उसका प्रत्येक कर्म कुकर्मों और अधर्मों का प्रतीक होता है। यह उसके मन और बुद्धि का ईश्वर के स्थान पर उसकी कल्पित शक्ति माया के निर्देश अनुसार समस्त सृष्टि के कार्य करना प्रमाणित करता है। ऐसी अवस्था में कई बार अन्य तो अन्य, बड़े-बड़े ज्ञानी-विज्ञानियों के भी ज्ञान चक्षुओं के आगे अज्ञान का पर्दा आ जाता है और वे भी माया का आधिपत्य स्वीकारने की नादानी कर बैठते हैं और अपने जीवनकाल में केवल अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु छल-कपट की राह अपना, विषय विकारों में फँस, इस संसार सागर में गोते खाते हैं। वे यह सत्य भूल जाते हैं कि केवल कामनाशक परमेश्वर ही उनको इस परिस्थिति से उबार सकते हैं और यही अचेतनता उनको दुराचारी, भ्रष्टाचारी, व्यभिचारी बना उनके विचार, आचार और व्यवहार को अनैतिक रूप देती है। तभी तो उनका संतोष व धैर्य बल क्षीण हो जाता है और उनके लिए सत्य-धर्म पर टिके रह इस जगत में निर्लिप्तता से विचरना असंभव हो जाता है। यही लिप्ति व अतृप्ति उनके हृदय में विकारों के पनपने का कारण बनती है और हो जाता है रोने-झुखने का सिलसिला आरम्भ, जिससे जीव की विश्राम अवस्था भंग हो जाती है। ऐसा होते ही हृदय अशांत हो उठता है और

इंसान सत्य-असत्य की पहचान खो बैठता है। याद रखो ऐसे सजन मानव होते हुए भी दानवीय कृत्य कर निंदा के पात्र बनते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि -

"संसार है ओ आत्मा, परमात्मा आधार है।
निराकार आकार ना कोई, है ओ अपरम्पार है।"

अगर हम इस तथ्य के अनुसार इस संसार में विचरें तो हमारे लिए आत्मज्ञान प्राप्त करना सहज हो सकता है। फिर हम उसी आत्मज्ञान को अपने विचार, आचार व व्यवहार में सत्यता से उतार, उस नित्य ब्रह्म और इस नश्वर संसार की रमज़ जान, स्वार्थ और परमार्थ के प्रति अपना फ़र्ज़ अदा प्रसन्नचित्तता से निभाने के साथ-साथ अपने स्वच्छ हृदय व सर्व-सर्व में सत्-चित-आनन्द स्वरूप का दर्शन भी कर सकते हैं।

अगर आपको संसार का यह सत्य समझ आ गया है तो आपको बोध हो गया होगा कि संसार की धारणा के प्रभाव से मन अधीर और चित्त अस्थिर हो जाता है जो बुद्धि की मलिनता का कारण बनता है। ऐसे में जब अहंकार अपना रूप दिखाता है तो इंसान का ख़्याल संकल्प-विकल्प के चक्रव्यूह में फँस जाता है। यह होती है उसके मन की अवचेतन व अचेतन अवस्था यानि सत्य ज्ञान स्रोत से उसका नाता टूटने और अज्ञान धारणा का सिलसिला आरंभ होने का सूचक। यही नहीं, यह होता है संकल्प का झुखना और रोने के स्वभाव का आरंभ होना यानि मन की शांति का भंग होना। अतः आप अपने साथ ऐसा मत होने देना और संसारी ज्ञान को मिथ्या ज्ञान समझकर यह मान लेना कि इस ज्ञान द्वारा मृतलोक को सम्पूर्णतया सत्यता से समझना असंभव है। इसलिए आत्मिक ज्ञान द्वारा इसके सार को पाने के उपरांत आवश्यकता अनुसार इसका बोध व प्रयोग तो करना परन्तु इसको धारण कर ख़्याल में कदापि नहीं उतारना।

स्थान : संसार समुद्र व ध्यान-कक्ष भवन के भूमितल से निचले बाह्य भाग पर

अब ध्यान से इस संसार समुद्र व ध्यान-कक्ष भवन के भूमितल से निचले बाह्य भाग को देखो और जानो कि इस भवन का आधार भी वही पाँच तत्व हैं जो आपके शरीर के हैं। ये पाँच तत्व क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश हैं। अब समझने का प्रयास करो कि नश्वर होते हुए भी ये दोनों अंतर्निहित ज्योति स्वरूप पारब्रह्म परमेश्वर का वास होने के कारण उसकी ब्रह्म सत्ता द्वारा इस जगत में कुछ भी कर दिखाने व प्रदान करने की सामर्थ्य रखते हैं। इसलिए इस सत्य को मानो और फिर जो चाहो सो पाओ क्योंकि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार 'ए घर उसे दा है, जो चाहो सो पाओ, ए घर उसे दा है'।

स्थान : संसार समुद्र व ध्यान-कक्ष भवन के भूमितल से निचले बाह्य भाग के सामने (गुलानारी रंग की महत्ता)

अब इसकी सामने वाली चारदीवारी पर नज़र डालो तो आपको चहुँ ओर एक ही गुलानारी रंग प्रतीत होगा।

यह गुलानारी रंग इस दीवार के बाहरी ओर खड़े हुए चारों वर्णों के इंसानों का यानि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का आवाहन कर रहा है कि आओ वर्णों के भेदभाव से ऊपर उठकर एक ही रंग में रंग कर एकभाव हो जाओ। यह है अपने मानव रूप होने का सत्य बोध होना और सम्पूर्ण मानव जाति के हृदयों से आपसी भिन्न-भेद का मिटना।

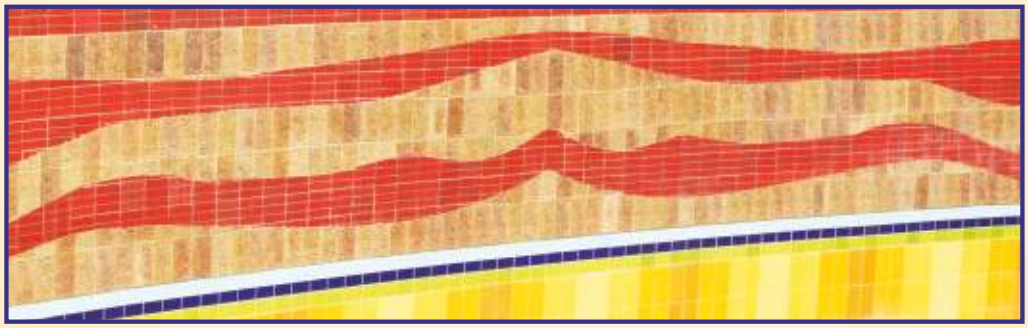

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार इस इलाही व पातशाही रंग की महिमा अपर-अपार है। इसको कोई विरला ही जान व पहचानकर धारण कर सकता है। इस संदर्भ में जानो कि यह रंग धुर से आया हुआ वह रंग है जिस रंग का बाणा श्री राम जी, श्री साजन जी व हनुमान जी ने पाया। इसी रंग ने उन्हें सजाया है परिणामस्वरूप उनकी रंगत देखकर आज भी सारा जगत उनके प्रति मस्ताना है। अतः उनसे प्रेरणा प्राप्त कर आपको भी सतवस्तु का यह बाणा धारण कर ख़ालिस सोना होने के लिए हृदय में उमंग जाग्रत करनी है।

अब अपने मन को संसार से निर्लेप कर लो और संतोष, धैर्य धारण कर सच्चाई-धर्म के मार्ग पर पुनः अग्रसर होने हेतु आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए ध्यान-कक्ष यानि समभाव-समदृष्टि के स्कूल में निर्भयता व आत्मविश्वास के साथ प्रसन्नता से प्रवेश करने के लिए तत्पर हो जाओ।

स्थान : ध्यान-कक्ष भवन के बाह्य मध्य भाग में स्थित तिरंगी पट्टी

इस तिरंगी पट्टी को इस प्रकार से समझो-

ये तीन रंग यानि हरा, नीला और आसमानी क्रमशः धरती, जल और आकाश के प्रतीक हैं। चूँकि हरा रंग हरियाली, भरपूरता, ख़ुशहाली व स्वस्थता को दर्शाता है इसलिए इसे धरती का प्रतीक चिह्न माना है। बीच वाला नीला रंग जल की अथाह गहराई, उसकी पवित्रता, शीतलता और निर्मलता को दर्शाता है इसलिए इसे जल का प्रतीक चिह्न माना गया है। ऊपर का हल्का नीला यानि आसमानी रंग शांति, शून्यता, असीमता, एकांत स्थान (जहाँ पर सजन

की सुरत ने प्रवेश करना है), ईश्वर, खालीपन, रूप-रंग-रेखा से रहित जिसके भीतर कुछ न हो निराकार, हर चीज़ से विहीनता को दर्शाता है इसलिए इसे आकाश का प्रतीक चिह्न माना है। इस प्रकार तिरंगी पट्टी के रूप में प्रदर्शित ये तीनों प्रतीक चिह्न असीम और अथाह हैं जिनका ईश्वर की तरह कोई पारावार नहीं।

स्थान : ध्यान-कक्ष भवन के बाह्य ऊपरी भाग पर स्थित आद् जोत, शंख-चक्र-गदा-पद्म व इन्द्रियाँ

अब ध्यान-कक्ष भवन के बाह्य ऊपरी भाग को इस ब्रह्मांड में खड़े होकर देखो तो आपको सबसे पहले आद् जोत नज़र आएगी और उसी के साथ-साथ इन्द्रियों के मध्य में आत्मिक शक्ति के रूप में शंख-चक्र-गदा-पद्म दृष्टिगोचर होंगे। अब जीव, जगत और ब्रह्म के खेल को इस तरह से समझो कि जहाँ आद् जोत परमेश्वर का प्रतीक है वहीं इन्द्रियाँ आपके अंतःकरण की परिचायक हैं और आत्मिक शक्ति के रूप में शंख-चक्र-गदा-पद्म आत्मा में सर्वव्याप्त, सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ परमात्मा के द्योतक हैं। इसी व्यवस्था द्वारा इस ध्यान-कक्ष व आपके शरीर रूपी मकान द्वारा चेतन शक्ति ग्रहण करने की प्रक्रिया सतत् चल रही है। अगर यह सत्य समझ आ गया है तो आजीवन अपना 'ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल' जोड़े रखने की प्रक्रिया के विपरीत चलकर जगत में फँसने की भूल कभी मत करना।

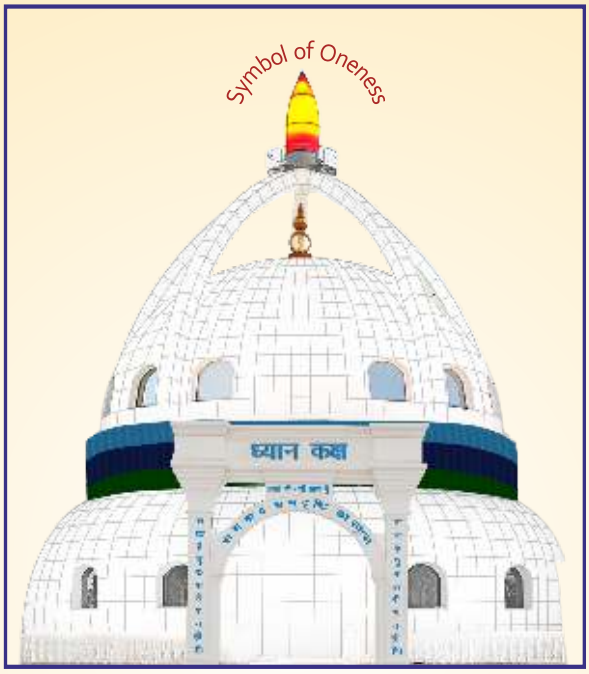

इसी संदर्भ में इन्द्रियों का आपके जीवन में क्या महत्त्व है उसे जानो -

इन्द्रियाँ शरीर के वे अवयव हैं जिनके द्वारा बाहरी विषयों का ज्ञान होता है और मनुष्य को बाहरी वस्तुओं के भिन्न-भिन्न गुणों का भिन्न-भिन्न रूपों में अनुभव होता है। अन्य शब्दों में इंद्रियाँ भोग का साधन होती हैं।

इन्द्रियों के दो विभाग हैं – पाँच ज्ञानइन्द्रियाँ और पाँच कर्मइन्द्रियाँ।

ज्ञानेन्द्रियाँ वे इन्द्रियाँ हैं जिनसे जीवों को विषयों का बोध या ज्ञान होता है यथा - आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा। रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श ये इन पाँच इन्द्रियों के यथाक्रम भोगने योग्य विषय हैं। ये पाँचों ज्ञान इंद्रियाँ विभिन्न संवेदनाओं को मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं इसीलिए इन्हें ज्ञान का स्रोत कहा जाता है। इनके द्वारा ज्ञान का प्रवाह बुद्धि के अंदर ही अंदर बहता रहता है। यही नहीं ये मस्तिष्क द्वारा प्रदत्त आज्ञाओं का पालन भी करती हैं।

बोलना, चलना, पकड़ना, मूत्र त्याग व मल त्याग ये शरीर के पाँच कर्म हैं, इन कर्मों को करने वाली पाँच शक्तियाँ यथा जिह्वा, पैर, हाथ, उपस्थ और गुदा कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं। इन इंद्रियों को हिला-डुला कर संबंधित क्रिया की जाती है। ये काम करने वाली इन्द्रियाँ कर्म की शक्तियाँ हैं जो मन एवं ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त आदेशों के अनुरूप कार्य करती हैं।

स्पष्ट है जहाँ ज्ञान की स्रोत पाँचों ज्ञान इंद्रियाँ दृश्य जगत की संवेदनाओं को मन-मस्तिष्क तक पहुँचाकर उसमें ज्ञान को प्रवाहित करती हैं वहीं कर्म की पाँचों शक्तियाँ ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर मन-मस्तिष्क को प्राप्त संदेशों के अनुरूप संबंधित क्रिया करती हैं।

इन इन्द्रियों के अतिरिक्त दोनों प्रकार की इन्द्रियों की विशेषता लिए हुए एक उभयात्मक अंतरेन्द्रिय भी है जिसे अंतःकरण कहा जाता है। अंतःकरण अर्थात् वह भीतरी इन्द्रिय जिसके विषय संकल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण आदि हैं तथा जो सुख-दुःख आदि का अनुभव करती है। कार्यभेद से इसके चार विभाग हैं। पहला मन जिससे संकल्प-विकल्प होता है। दूसरा बुद्धि जिसका कार्य है विवेक व निश्चय करना। तीसरा है चित्त जिससे बातों का स्मरण होता है। चौथा अहंकार जिससे सृष्टि के पदार्थों से अपना संबंध दिखाई देता है। अंतःकरण में तीव्र अभिमान के साथ विराग भी है। अपना यथार्थ बोध करने हेतु अंतःकरण को अप्रगट आंतरिक कर्म द्वारा शुद्ध रखने का विधान है।

अगर हम ऊपरलिखित क्रिया अनुसार अपने अंतःकरण की व्यवस्था की स्वच्छता व स्वस्थता एकरस सुदृढ़ साधे रखने हेतु जागरूकता से अपने ख़्याल पर ध्यान का पहरा रखना सुनिश्चित कर पाते हैं तो हम अपने अंतःकरण को शारीरिक इन्द्रियों के विषयों व सृष्टि के संबंधों के प्रभावों से मुक्त रखते हुए इन इन्द्रियों के सदुपयोग द्वारा इस जगत में विचरते हुए अपने ख़्याल को आत्मीयता में सम्मोहे रख सकते हैं। इस प्रकार एक भले आदमी की तरह आनंदमय शांतिपूर्वक जीवन जीते हुए कभी भी जन्म-मरण के चक्रव्यूह में नहीं फँस सकते।

स्थान : ध्यान-कक्ष भवन – भूतल

अब हम बढ़ रहे हैं भूतल की ओर। भूतल में प्रवेश करने से पहले जो उसके द्वार पर लिखा है उसे पढ़ो।

सर्गुण द्वार पर अंकित शब्द इस प्रकार हैं -

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
सर्गुण में साजन जी दी देखो चाल
सर्गुण
कई कई खेडां खेडे, खेड रिहा कमाल
शब्द है गुरु, शरीर नहीं है
अमर है मेरी आत्मा
सर्गुण

सर्गुण के मध्य–'शांति-शक्ति' का प्रतीक चिह्न

अब सर्गुण द्वार पर लिखित इन शब्दों के अर्थों को हृदय में उतारो और सर्गुण को समझने से पूर्व सर्गुण के मध्य, अक्ष रूप में सुशोभित उस निर्गुण परमेश्वर का अर्थात् सर्व एकात्मा के रूप में भासित अपनी ही आत्मा का करबद्ध नतमस्तक हो, एहसास करें। यही हीरा जो सबसे महान व अनमोलक रत्न है वज्र अवस्था में बने रह सम्पूर्ण ब्रह्मांड में अपनी चमक दिखा रहा है और अपने आप में प्रत्यक्ष ज्ञान का स्रोत है। तभी तो इस विधान को स्वीकारते हुए कहा गया है कि जब-जब भी जिस-जिस मानव ने इस स्रोत से सत्य ज्ञान प्राप्त किया, केवल वह ही सबसे उत्तम पुरुष कहलाया और उसने अपना नाम जगत में रोशन किया। याद रखो जो ऐसा पराक्रम दिखाता है उसकी ही यश-कीर्ति की सुगंधि देवलोक की सुगंधि को भी मात कर देती है।

शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी विष्णु भगवान भी इसी का प्रतीक हैं। इसलिए अब इसके प्रति आत्मविश्वास व श्रद्धा के साथ निश्चय लो कि जैसे अक्ष पर पृथ्वी घूमती है और वह इस क्रिया के दौरान एक ही स्थान पर या एक ही अवस्था में स्थिर बना रहता है वैसे ही इस ब्रह्मांड में विचरने की क्रिया करते समय आपको अपने मन को उपशम कर सम अवस्था में इस तरह एकाग्रचित्तता से साधे रखना है कि इसके ऊपर घूमने वाले जगत प्रभावित भाव से चलायमान हो यह अपनी समरसता न खो बैठे। याद रखो यदि ऐसा हो गया तो समभाव स्थित रहने के स्थान पर इस जगत के कारण भाव हृदय में घर कर जाएँगे।

तब आपका मानसिक संतुलन इस तरह से बिगड़ जाएगा कि अक्ल टिकाणे नहीं रहेगी और आप भ्रमित बुद्धि इंसान कहलाओगे। आपके साथ ऐसा न हो और समदृष्टि जैसे विशेष दिव्य गुण का वर्धन हो इस हेतु जो आपको यहाँ पर करना है इसकी परिधि पर लिखित है उसे पढ़ो-

समभाव-समदृष्टि की युक्ति द्वारा सजन-भाव अमल में लाने हेतु इस शांति-शक्ति के प्रतीक के आगे सीस अर्पण करो।

प्रतीक चिह्न से निकलते रंगों की महत्ता

इस प्रतीक चिह्न पर अंकित चार रंगों के अर्थ व महत्त्व को इस प्रकार ध्यान से समझो -

पहला रंग-सुनहरी - सुनहरा रंग सबसे अच्छा और श्रेष्ठ माना जाता है। तभी तो विष्णु को स्वर्णबिन्दु कहते हैं यानि वह ज्ञाता, वेत्ता व दाता जो जानने योग्य हो व शून्य हो। इसी सन्दर्भ में सूर्य को प्रकाशपुंज यानि प्रकाश आभा, कांति व सौन्दर्य का स्रोत होने के कारण ही स्वर्णभाज कहते हैं। सबसे अच्छे व श्रेष्ठ युग या समय को स्वर्णयुग, जहाँ सब प्रकार के सुख हों उसे स्वर्ण भूमि कहते हैं। इसी प्रकार एक बहुमूल्य और बहुत सुंदर उज्ज्वल पीले रंग की धातु जिसके गहने आदि बनते हैं उसको सोना यानि स्वर्ण कहते हैं।

यह सर्वोतम चेतना व हर रोग के निवारण का सबसे सबल रंग है। यह इतना

शक्तिशाली है कि अधिकतर लोग इसे सहन नहीं कर पाते। इसके लिए उन्हें पहले अपना परिशोधन करना पड़ता है। यह शरीर और मानस के हर अंग और प्रत्यंग को सुदृढ़ करने वाला है। उसके विश्वास, वफ़ादारी, बुद्धिमत्ता, प्रोत्साहन, आध्यात्मिक प्रेम, सच्चाई, समृद्धि व यश-कीर्ति को जतलाने का सूचक है। यह सुबोध के लिए प्रोत्साहित करने वाला, ब्रह्माण्डीय ओज को आकर्षित करने वाला, आकर्षण चिह्न व शाश्वत है।

दूसरा रंग-गुलानारी - जैसा कि इसकी महिमा का वर्णन पहले पृष्ठ संख्या 104 पर किया ही जा चुका है कि यह रंग सभी प्रकार के भेदभाव मिटाकर अर्थात् एक ही रंग में रंगकर एकभाव होने का प्रतीक है।

तीसरा रंग-नीला -यह रंग आकाश रूपी शून्य स्थान को दर्शाता है जहाँ से इस ब्रह्मांड की रचना हेतु अन्य चार तत्वों यथा वायु, अग्नि, जल व पृथ्वी का भी उद्भव होने का मंगलघोष होता है। स्पष्ट है कि पंचतत्त्वों में यह रंग आकाश तत्व का प्रतिनिधित्व करता है। यदि ध्यान से देखा जाए तो सृजनकर्त्ता ने अधिकतम नीला रंग ही कुदरत को दिया है। नीला आसमान, सागर, नदियाँ आदि इसके उदाहरण हैं। यह स्थिर जल के समान है, जिसका स्वभाव शांत है। ब्रह्मांड के दृष्टिगत यह विस्तृत व्योम तक फैला हुआ है अर्थात् नित्य, सनातन है और अनंत की ओर इंगित करता है और प्रलय, जीवन और पुनर्जन्म का द्योतक है।

गहरा नीला रंग पवित्र माना जाता है और सौम्यता, स्वच्छता और शांति दर्शाता है। आध्यात्मिकता और बुद्धिमत्ता से जुड़ा हुआ यह रंग सत्य, ईमान, पवित्रता व निष्ठापूर्ण आचरण का प्रतीक है। वीरता, पुरुषत्व, दृढ़ संकल्प, निश्चय, जीवन की विभिन्न परिस्थितयों में समझौता करने की क्षमता, स्थिरता व चरित्र की गंभीरता को इस रंग से दर्शाया जाता है। यह रंग आध्यात्मिक विकास व

ध्यान के लिए आदर्श रंग है और विश्राम, तनाव-मुक्ति, प्रेम, धैर्य, वफ़ादारी, स्वाथ्यप्रदता, अलौकिकता, प्रसन्नचित्तता, संरक्षण, निर्भयता, उदासीनता, धार्मिकता का सूचक है।

इसके अतिरिक्त यह रंग शीलता, दिव्य-चेतना, सामजंस्य, समरसता, मेल, एकता, शीतलता, आशा-विश्वास, सजनता, रक्षात्मक प्रकृति, सन्तुष्ट व प्रसन्न करने वाला, मनोविकारों को शांत करने वाला, नाड़ियों को निर्द्वन्द कर गंभीर करने वाला माना जाता है। इससे ज्ञात होता है कि यह रंग जीवन के स्थिर मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है व मनुष्य की मानसिक उत्तेजना को मिटाकर हृदय को शांत रखता है। इस प्रकार यह रंग हृदय को विशाल और इन्सान को ऊँचे विचारों वाला बनाता है। यह रंग एक मानव के हृदय में मनुष्यता और मानवता की रक्षा व बुराई का विनाशक माना जाता है इसलिए नीली आभा को ही श्रेष्ठ एवं शक्तिशाली माना गया है।

चौथा रंग-श्वेत या सफ़ेद - श्वेत रंग में किसी प्रकार का दोष नहीं होता। तभी तो इसे निष्कलंकता का सूचक कहते हैं। पुराण अनुसार क्षीर सागर के पास का एक द्वीप जहाँ विष्णु भगवान निवास करते हैं उसे श्वेत द्वीप कहते हैं। चंद्रमा व शंख को क्षीरज कहते हैं।

इसके अतिरिक्त सात रंगों का मिश्रण होने के कारण यह हर रंग की विश्राममय और शीतल स्थिति को थोड़ा-थोड़ा व्यक्त करता है। यह सर्वशक्तिमानता, सरलता, अलौकिकता, स्वच्छता, संशोधन, नवीनता, कोरापन, जीवाणुरहित, सरलता, शुचिता, श्रद्धा, विश्वास, बोध, शांति, स्वाभाविकता, उत्तमता, उपकारिता, सशक्तता, साहस, आत्मविश्वास, सच्चाई, प्रबोधन, प्रसन्नचित्तता, दिव्यता, यश-कीर्ति, एकता, प्रकाश व संस्कारयुक्तता का सूचक है।

अब शांति शक्ति प्राप्ति हेतु मध्य में सुशोभित 'गदा' पर पूरी श्रद्धा व विश्वास से

निगाह डालो और इसके निम्नलिखित महत्त्व को समझते हुए मन में शाश्वत शांति-शक्ति का एहसास कर इसे धारण करने का ध्यानपूर्वक यत्न करो ।

मध्य में स्थित 'गदा' का महत्त्व

गदा का अर्थ है मुद्गर। इसको धारण करने वाले को गदाधर कहते हैं। इसको धरने और सम्भाल कर थामने व ग्रहण करने की क्रिया दाहिने हाथ से होती है इसलिए गदा से सुसज्जित दाहिने हाथ की शोभा निराली होती है।

यह शंख-चक्र-गदा-पद्मधार का प्रतिष्ठा सूचक पद भी माना जाता है। इसलिए उन्हें गदाधर की उपाधि प्राप्त है। यह पद सबसे श्रेष्ठ व अंगीकार करने योग्य है। जिस किसी को भी इस पद की प्राप्ति होती है केवल वही इस ब्रह्मांड में सबसे श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान होने के नाते गदाधारी के पद को प्राप्त करने वाला कहलाता है जैसे सजन श्री शहनशाह हनुमान जी। इसी कारण उन्हें कोई उपाधि छू नहीं सकती और वे सम्पूर्ण ब्रह्मांड को किसी भी उपाधि यानि छल-कपट, काम-क्रोध, झूठ, द्वि-द्वेष, चोरी-ठगी आदि के कारण उत्पन्न होने वाले उपद्रवों व अनिष्टों से बचाए रखने के हेतु हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि गदा शांति-शक्ति का हथियार है और अंतःकरण की शुद्धता का सूचक है।

इसी सन्दर्भ में शांति रूपी शक्ति हर बाधा व अमंगल आदि दूर करने वाला धार्मिक उपचार है। यह मन की ऐसी अवस्था है जिसमें वह क्षोभ, चिन्ता, दुःख आदि से रहित रहता है। इस प्रकार शांत मन वेग, गति, क्रिया आदि का अभाव होने के कारण निश्चल होता है और संसार की असारता का ज्ञान या परमात्मा के स्वरूप का चिंतन कर पाता है। स्पष्ट है कि शांति चित्त की स्वस्थता का प्रतीक है। इस साधना द्वारा मानव जब नीति अनुसार अनुग्रह या निग्रह करने में सामर्थ्यवान हो जाता है तो वह श्रेष्ठ बुद्धि नियमानुसार ईश्वर के निमित्त सच्ची सेवा करने के योग्य माना जाता है और गदा धारण करने का अधिकारी बनता है।

इसके अतिरिक्त शांत अवस्था में कामनाओं यानि आशा-तृष्णा का अभाव होने के कारण विचारशक्ति प्रबल होती है और ध्यान इधर-उधर नहीं बँटता। मन की यह स्थिर अवस्था उसकी एकाग्रता का सूचक होती है जिससे चित्तविभ्रम नहीं पनपता। इसलिए चित्त के भेदों या रहस्यों की सत्य-असत्य प्रतीति द्वारा बुद्धि यथार्थता का बोध सहज कर पाती है और उदासीनता व उदारचित्तता जैसे महान सद्‌गुण हृदय में विकसित होते हैं। फलतः अहं नहीं सताता।

फिर जब मन में कोई संकल्प बाकी नहीं रहता तो निर्मल व हितकर सजन-भाव का उद्‌भव होता है जो सज्जनता व सदाचारिता का द्योतक होता है। यह उसके दृढ़, उदार व निर्मल हृदय होने का परिचायक होता है। इस प्रकार वह विशेष बुद्धिबल वाला प्रतिभाशाली समभाव-समदृष्टि की युक्ति को सजन-भाव के प्रभाव द्वारा बुद्धिमत्ता से अपने आचार-व्यवहार में उतार ईश्वरीय गुणों का आदर्श रूप कहलाता है।

मन की शांतमय अवस्था उसमें संतोष और धैर्य की पूर्णता जनाती है जिससे उसके साथ-साथ गंभीरता, सौम्यता और उदासीनता जैसे भाव प्रगट होते हैं। तभी तो वह सभी सांसारिक भोगों यानि विषय-वासनाओं से अप्रभावित रह उनके प्रति पूर्ण रूप से विरक्त हो जाता है। उसके हृदय से दुष्ट विकारों का यानि कलियुगी भाव-स्वभावों का अंत हो जाता है और विरोधापशमन होते ही चीख-पुकार या हो-हल्ले व युद्ध, मार-काट आदि का अभाव होता जाता है। इस प्रकार मौन अवस्था धारण कर वह सामंजस्य विधान के अनुसार आचार, विचार व व्यवहार अपनाकर अमन-चैन से उत्साहपूर्ण जीवन जीता है जो लक्षण होता है सतवस्तु के आगमन का।

यह होता है मन का उपशम हो फुरनों से निवृत्त हो जाना और ख़्याल का अपने मन-मन्दिर रूपी विश्राम-कक्ष में स्थिर हो आत्मीयता को अपनाना। यह मंगल कृत्य ईश्वर के आशीर्वाद से उस जीव को हर कलंक से मुक्त रख मोक्ष प्राप्ति का सौभाग्य प्रदान करता है यानि तीनों ताप मिट जाने से मौत का भय समाप्त

हो जाता है। तभी तो उसकी सुगंधि लोक-परलोक में फैलती है।

यहाँ याद रखो इस गदा रूपी शांति शक्ति के हथियार का धारक अपने सिद्धान्त अनुसार युद्ध और संघर्ष का विरोध करता है और संसार में शांति चाहता है व शांति स्थापना के लिए हर प्रयत्न करता है। वह कोई भी ऐसा उपद्रव अथवा अनुचित कार्य नहीं करता जिससे जन-साधारण के सुख और शांतिपूर्वक रहने में बाधा उत्पन्न होती है। उसमें शांति के निमित्त त्याग भावना प्रबल होती है। इस प्रकार ईश्वर में अनुरक्तता द्वारा हृदय व रोम-रोम, रग-रग में संचरित ब्रह्म सत्ता का निर्मल प्रवाह गदा धारक के अंतर्निहित पराक्रम को जाग्रत कर स्वयमेव उसको अपने बलवान, मज़बूत व शक्तिशाली होने का एहसास करा देता है।

यही बुद्धि की पूर्ण चैतन्य अवस्था कहलाती है। इस चेतन अवस्था में वह अपनी अंतर्निहित विभिन्न शक्तियों की पहचान कर, उनका समयानुसार यथोचित ढंग से प्रयोग कर किसी भी कार्यसिद्धि हेतु पराक्रम दिखाने में नहीं सकुचाता और अपने हर प्रयास में विजयी होता है। ऐसा पराक्रमी ही निज सामर्थ्य के अनुसार अपने मन पर शासन कर पाता है और अपने अंतःकरण को अपनी प्रभाव शक्ति द्वारा प्रकाशित रख उस पर हर क्रिया का होने वाला यथार्थ परिणाम जना उसे किसी ओर करने या शुद्ध रखने का कर्त्तव्य बखूबी निभा पाता है। यह होता है अंतःकरण की वृत्तियों की निर्मलता सुनिश्चित करना। यहीं से ही जीवनकाल में आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने का महत्त्व समझ आता है और उसके प्रति उत्साह बढ़ता है तथा सद्कर्म करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। यह प्रेरणाशक्ति ही मन में शांति का निर्माण करती है।

अंततः गदा, धारक के हृदय में ऐसे बाँध का हेतु होता है जो इस लौकिक जगत या संसार के किसी भी विषय-विकार को उसमें घर नहीं करने देता जिससे उसके निर्मल हृदय में अलौकिक दिव्य गुण विकसित होते हैं। फलस्वरूप उसमें कर्त्तव्य का विचार सदा सुदृढ़ बना रहता है और अपने कर्त्तव्यों को

विधिवत् निर्भयता व निष्कामता से निभाना उसके लिए सहज हो जाता है।

याद रखो कि शांतिदाता और कोई नहीं शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्री विष्णु भगवान ही हैं। इसलिए यह सिद्ध होता है कि गदा धारण करने का अधिकारी केवल वही होता है जिसका मन शांति से पूर्णरूपेण भरा हुआ यानि शांतिमय हो। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार-

आप दी लाईट संख चक्र गदा पद्म धारे, लाईट आप दी है मालो माल साजन
आप दी लाईट जगत निर्लेप दिस्से, लाईट आप दी ओंकार इक ओंकार साजन'

याद रखो कि इस क्रिया में सफलता युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति के प्रवीणता से अनुशीलन द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। इससे बल की प्राप्ति होती है। इस युक्ति के अंतर्गत दो साल पढ़ाई और पाँच साल गुढ़ाई के वर्त-वर्ताव द्वारा अपने संकल्प कुसंगी को संगी बनाना होता है और संतोष, धैर्य और सच्चाई धर्म के सवाल हल करके फ़तह पानी होती है। फिर सम का कोई सवाल नहीं रहता। नौजवान युवा-अवस्था आ जाती है और उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल, भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर हो जाती है। आओ अब सर्गुण क्या है इसे सूक्ष्मतः समझो-

सर्गुण की महत्ता

परमात्मा का वह साकार रूप जो सत्व, रज और तम तीनों गुणों से युक्त हो सर्गुण कहलाता है। इसके अंतर्गत भौतिक या सांसारिक सद्‌गुणों से युक्त ब्रह्म को सर्गुण रूप अवतार मानकर उसकी पूजा व मानता होती है। यहाँ से भिन्न-भिन्न प्रकार के बाल्यावस्था के भक्ति-भावों रूपी आडम्बरों व कर्मकांडों का आरम्भ होता है। यह जान लो कि सर्गुण के ये विभिन्न आडम्बरयुक्त भक्तिभाव अधिकांशतः कष्टप्रदायक होते हैं जिनसे नाना प्रकार के फुरने स्वतः स्फुटित होते हैं जो ख़्याल की एकाग्रता को भंग कर सुरत की अफुर अवस्था बनने में विघ्नकारी यानि बाधक सिद्ध होते हैं। यद्यपि इन भक्ति-भावों का मुख्य ध्येय स्वार्थ-सिद्धि होता है परन्तु फिर भी कोई विरलों में से विरला इस प्रकार की आराधना और साधना द्वारा मोक्ष को भी प्राप्त कर लेता है।

याद रहे इस प्रकार का भक्ति-भाव अपनाने वाले सजनों का ख़्याल संकल्प-विकल्प में फँसा होता है जिसके कारण उनके लिए उसको परमात्मा की निर्गुण इलाही जोत से जोड़े रखना तो दूर रहा, इन सर्गुण स्वरूपों के सद्‌गुणों या जीवन-चरित्रों को अपनाना भी अति कठिन व नामुमकिन हो जाता है। यही कारण है ऐसे जीव समभाव नज़रों में कर समदृष्टि होने में भी असक्षम होते हैं।

यही अज्ञान और दुर्बलता उन जीवों को द्वि-द्वैत में फँसा सेवक-स्वामी, भक्त-भगवान और गुरु-चेले के संबंध रूपी बंधन में बाँध उनके ख़्याल को दूसरों की अधीनता स्वीकारने के लिए मजबूर कर देती है। फिर सर्गुण में दीवान लगता है और आरंभ होते हैं सुरत और शब्द में भिन्न-भिन्न प्रकार के खेल। यहाँ विचारने की बात यह है कि ये सब खेल खेलते हुए भी न तो उनकी सुरत यानि अन्दर का ख़्याल उस साकार ब्रह्म को पहचान सकता है और न ही उस जैसा विशाल और निर्मल हृदय हो इस जगत में विचरते हुए निर्लेप रह सकता है।

ऐसा सजन अनजानपने और थोड़ी बुद्धि होने के कारण सर्गुण अवस्था व व्यवस्था में भी स्थिर नहीं रह पाता। न ही वह अपना संतोष-धैर्य मज़बूत रख पाता है और न ही अपना फ़र्ज़ अदा सच्चाई-धर्म से निभा पाता है। यह आत्मिक

ज्ञान प्राप्ति के साधन सत्-वस्तु से विमुख हो मनमत पर चलने के कारण होता है। तभी तो ऐसे सजन के लिए उसका असलियत अपना आप, जगत और ब्रह्म रहस्यमय होता है। यही अज्ञान अवस्था कारण बनती है उसके हृदय में संतोष और क्षमा के अभाव की, परिणामस्वरूप दुर्भावों की वृद्धि की।

जानो कि जब और जहाँ से सर्गुण रचता है तब वहाँ उस बिंदु पर परमेश्वर शंख-चक्र-गदा-पद्मधार शेष की बिछाई पर विराजमान हो विराट् रूप में उस रचित ब्रह्मांड अर्थात् सारे विश्व में शक्ति-लक्ष्मी के संग व्याप्त हो जाते हैं। यह सत्य मानते तो सब हैं पर भौतिकवाद में फँसे वे स्वार्थी इस अलौकिक खेल में अपना योगदान देने व अपनी भूमिका ठीक से निभा पाने में प्रवीण होने की चेष्टा नहीं करते। यह परिस्थिति उनकी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक अस्वस्थता की सूचक होती है। इसी चंचलता व अस्वस्थता के कारण वे एक निगाह एक दृष्टि नहीं हो पाते और एकाग्रचित्त हो उस बिंदु पर सुशोभित परमेश्वर के साथ अपने ख़्याल को जोड़े नहीं रख पाते। इसी कारणवश सत्य उनके ख़्याल से विस्मृत हो जाता है।

उस परमेश्वर के रचित सर्गुण का अंश होने के नाते उसके विराट् रूप में स्थिरता से निर्भय व अडोल बने रह अपने फ़र्ज़-अदा को सच्चाई-धर्म से निभाने से ही हम उस घट-घट में रमने वाले के सार को पा सकते हैं। ऐसा होते ही हम संतोषी तथा क्षमावान हो त्रिकालदर्शी हो सकते हैं और हमारी सुरत रानी बनकर अन्दर महाराज जी के साथ टापू-टापू में विचरती हुई सर्गुण में पहुँच सकती है और महाराज जी के साथ रहते हुए पटरानी बनकर उनकी चालें पकड़ते हुए उनके साथ मेल खा सकती है। यह कार्य युवावस्था की भक्ति जो है "समभाव-समदृष्टि की युक्ति" द्वारा सुगमता से तब सिद्ध हो सकता है जब हम रचित सर्गुण की असलियत को अपनाकर, अंतर्निहित शक्ति को संग रख युवावस्था दिखाएँ और शक्ति वल्लों ताकतवर हो जाएँ।

आओ अब जानें कि ऐसा क्यों कर और कैसे संभव हो जाता है ?

समभाव-समदृष्टि की युक्ति के अनुशीलन द्वारा एक तो बल की प्राप्ति होती है और

शक्ति ताकतवर हो जाती है जिससे हमारा संकल्प कुसंगी संगी हो जाता है और दूसरा संतोष, धैर्य और सच्चाई, धर्म के सवालों पर फ़तह पा जाने से सम का कोई सवाल नहीं रहता। इस अवस्था को प्राप्त होने वाला पुरुषार्थी उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल कहलाता है और उसकी भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर हो जाती है। अंततः वह उस परमात्मा के सर्गुण रूपी खेल के सार को पा लेता है और निर्भयता व निपुणता से उस खेल को खेलते हुए भी उसमें फँसता नहीं।

आप भी वर्तमान में अपना भविष्य मुट्ठी में कर सौभाग्यशाली इंसान बनने हेतु कुदरत के संकेत अर्थात् इस कक्ष के अन्दर चारों ओर लिखे हुए फरमानों को ध्यान से पढ़ो-

सर्गुण कक्ष के अन्दर चारों ओर लिखे हुए फ़रमान

1 सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार

2 सजन कलुकाल हटने वाला है सतवस्तु आने वाली है ।

3 सतवस्तु में विचार ते सतज़बान होसी,
एक निगाह एक दृष्टि व एकता महान होसी।

4 न जप, न तप, न भजन, न बन्दगी,
एक अवस्था ओ जगत जहान होसी।

5 सतवस्तु में कला से, सब कुछ उपजेगा,
एक दर्शन होगा और प्रगटेंगे लक्ष्मी नारायण चतुर्भुजधार।

6 समभाव-समदृष्टि के प्रभाव से,
सजन-भाव का वर्त-वर्ताव होगा।

7 न अमीरी न फ़कीरी, न पीरी न वज़ीरी,
न ग़रूरी न मग़रूरी होगी।

न अमीरी न फ़कीरी,
न पीरी न वज़ीरी,
न ग़रूरी न मग़रूरी होगी।

सतवस्तु में सज्जनों का
अंतःकरण शुद्ध होगा,
मन-चित्त शांत होगा,
विचारशक्ति महान होगी।

8 सतवस्तु में सजनों का अंतःकरण शुद्ध होगा,
मन-चित्त शांत होगा, विचारशक्ति महान होगी।

9 वृत्ति, स्मृति, बुद्धि व वाणी निर्मल होगी,
सभी अपने असलियत अविनाशी स्वरूप को पहचानने वाले होंगे।

10 ख़्याल स्वच्छ, दृष्टि कंचन व जिह्वा स्वतंत्र होगी,
सभी निर्मल बुद्धि, आत्मज्ञानी व ब्रह्मज्ञानी होंगे।

11 खुला प्रकाश होगा, युवाअवस्था महान होगी,
उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल, भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर होगी।

12 इस हेतु साधना करो ते लावो ध्यान, रस्ता पकड़ो निष्काम,
संकल्प कुसंगी को संगी बना निर्विकारी बनो।

13 समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार,
सजन शब्द चलाओ जित्तो मृतलोक नूं।

14 संतोष-धैर्य का श्रृंगार पहन, सच्चाई-धर्म का मार्ग अपनाओ,
दिव्य-दृष्टि का सबक पका, त्रिकालदर्शी हो जाओ।

15 जनचर, बनचर और जड़-चेतन एक दर्शन मानो
और विचार ईश्वर आप नूं मान ब्रह्म नाम कहाओ।

भूमिगत-कक्ष प्रवेश द्वार

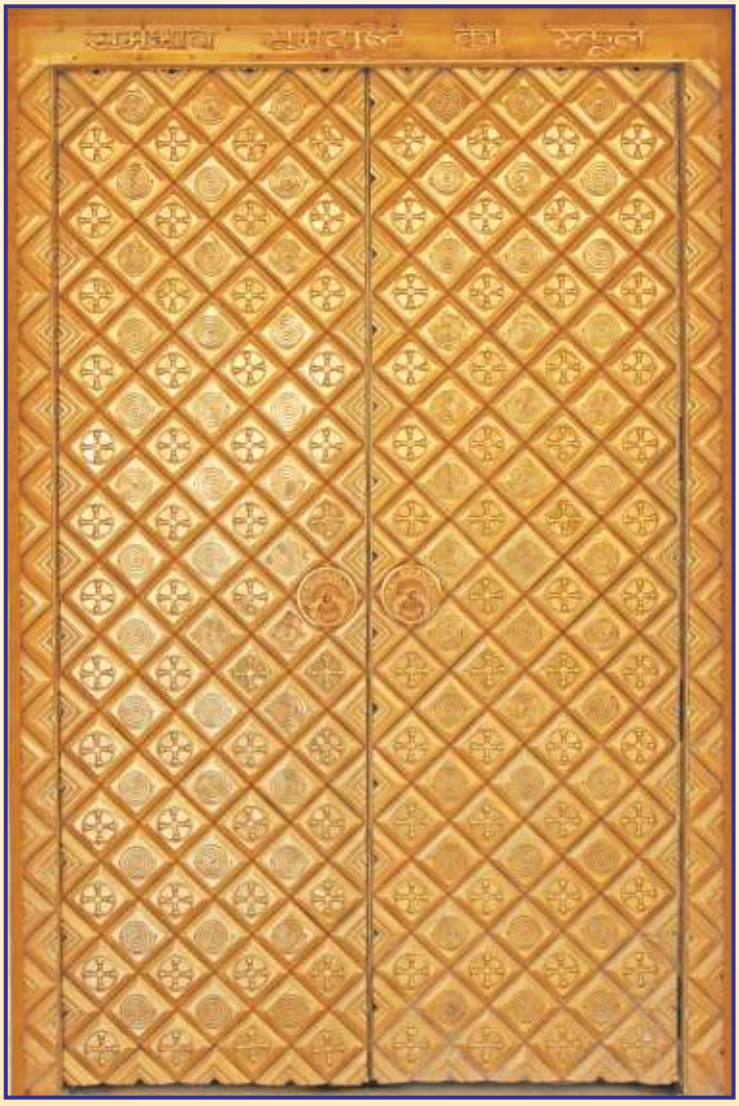

स्थान : ध्यान-कक्ष भवन - भूमिगत कक्ष

ध्यान कक्ष का यह तल समभाव-समदृष्टि का स्कूल है जहाँ से युक्तिसंगत सजन-भाव की पढ़ाई कराई जाएगी। अब अपनी असलियत को जानने हेतु व आने वाले समय के अनुरूप ढलने के लिए अपने शरीर रूपी घर के भूमिगत कक्ष यानि वक्ष-स्थल में उतरो और अपने हृदय में सुशोभित अपनी चेतन शक्ति आत्मा के दर्शन करो। अब जानो कि इसी के पास ही एक ऐसा अवयव है जिसमें प्रेम, हर्ष, शोक, करुणा, क्रोध आदि मनोविकार उत्पन्न होते हैं। यह अविचार के हेतु ही तो आपकी विवेक बुद्धि हरते हैं और इनके पराधीन हुआ भ्रमित बुद्धि इंसान सत्य-असत्य की पहचान खो बैठता है।

तभी हम अपने हृदयगत यानि मन में आसीन, सोचा हुआ, अभिकल्पित या हम कह सकते हैं जो मन में पाला-पोसा गया हो उसकी हृदय तल पर अंकित परिकल्पना, अर्थ व आशय पढ़-समझ नहीं पाते। यही परिस्थिति हमारे मन की अशांति का कारण बनती है। ऐसा होने पर अन्दरूनी संचालन व्यवस्था अस्थिर हो जाती है। इससे मन-मस्तिष्क बेचैन हो उठते हैं और असंतोष रूपी विकृति पनपती है। फिर मन रूपी शक्ति से जो भी अनुभव, संकल्प-विकल्प, इच्छा, विचार आदि होते हैं वे सब के सब उनका वास्तविक तत्व ज्ञात न होने के कारण तर्कशील होते हैं। इसी कारण जब हमें किसी विषय में अज्ञात तत्व को जानने हेतु पूर्ण युक्ति नहीं मिलती तो हम अपनी इस असक्षमता को छिपाने के लिए चतुराई या व्यंग्य भरी बात करते हैं। यहाँ से ही होता है बहस व वाद-विवाद करने की क्रिया का आरंभ जो एक दूसरे के प्रति क्रोध, तिरस्कार, फटकार, डाँट-डपट यहाँ तक कि भय प्रदर्शन द्वारा धमकाने व अपमान करने का सूचक होता है जो कि कलुषित कलियुगी भाव-स्वभावों का आधार है।

इसी हृदयविदारक स्थिति के दृष्टिगत ध्यान-कक्ष के इस भूमिगत कक्ष से अंतःकरण के रहस्यमय विज्ञान को पढ़ा-समझा आपके मन को जन्म-जन्मांतरों

से अपनाए कलियुगी भाव-स्वभावों से आज़ाद करा ख़्याल को आने वाले समयकाल यानि सतयुग के अनुकूल इस तरह से ढाला जाएगा कि आप एक निगाह एक दृष्टि हो अपने मन-मंदिर में उस साजन ईश्वर के दर्शन कर सकोगे। जानो कि इसी साधना व ध्यान द्वारा निष्काम रास्ते पर चलते हुए आपका ख़्याल जगत में निर्लिप्त भाव से विचरते हुए अपने घर में सधा रह सकेगा यानि अपने हृदय स्थित सतवस्तु की पहचान कर सतवस्तु में प्रवेश कर सकेगा। आपके लिए यह होगा अपने जीवनकाल में एक सजन पुरुष होकर इस जगत में विचरते हुए अपनी उत्कृष्टता सिद्ध करना।

स्थान : ध्यान-कक्ष से निर्गुण द्वार की ओर जाती सीढ़ियों पर (एकता का प्रतीक - महत्त्व)

समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई द्वारा सर्गुण की रचना जानने के पश्चात निर्गुण में प्रवेश करने हेतु सीढ़ियों से पहले तल यानि बारादरी की ओर बढ़ते हैं। सीढ़ियों के सम्मुख दीवार पर बने एकता के प्रतीक चिह्न को ग़ौर से देखते हुए अपनी अंतर्निहित शक्तियों और उन्हीं अनुरूप अपनाने योग्य भाव-स्वभावों को इस प्रकार जानो -

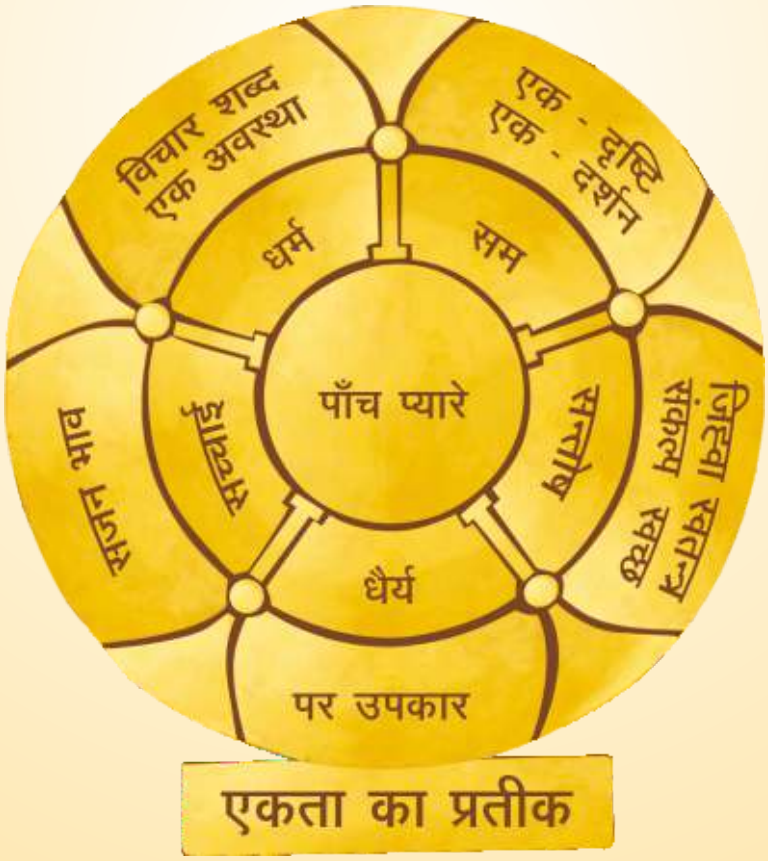

एकता का प्रतीक–महत्त्व

ब्रह्माण्ड में पारमार्थिक सत्ता जो नित्य है और सर्वव्यापक है, केवल वह ही सत्य है। आदि-प्रमादि काल से इस वास्तविकता को जानने वाला ही ब्रह्मज्ञानी एवं दार्शनिक कहलाया। ऐसे सजन को ही ब्रह्म, आत्मा और सृष्टि आदि के सम्बन्ध का यथार्थ ज्ञान होता है। ऐसा सजन अपने सिद्धान्त का पक्का होता है और इस ब्रह्माण्ड में विचरते हुए तत्वज्ञान अर्थात् सत्यज्ञान प्राप्त करने वाली बुद्धि और दृष्टि रखता है जिससे वह अपने जीवन काल में न्यायसंगत और धर्म-परायण बना रहता है। आत्मिक ज्ञान के गहन विचार द्वारा 'मैं ब्रह्म हूँ' के रहस्य व सूक्ष्मता को जानने वाला होता है। उसे तत्वपुरुष भी कहते हैं क्योंकि वह इस ब्रह्माण्ड के मूल कारण-सार वस्तु को जानने वाला होता है। वही मनुष्य चोला धारण किए हुए अपनी अजरता-अमरता को जाने रहता है और इस ब्रह्माण्ड में निर्भय विचरता हुआ अपने जीवनकाल में निज उद्देश्य को सिद्ध कर लेता है। ऐसा महान गुणी ही अध्यात्म-विद्या अर्थात् कुदरती साइंस को जानने वाला दक्ष, इस ब्रह्माण्ड में संगति-योग है क्योंकि उसमें और ईश्वर में फ़र्क होते हुए भी फ़र्क नहीं होता। ऐसे सजन द्वारा बताया ज्ञान कुदरती होता है और अपनाने योग्य होता है। ऐसे ज्ञान का ग्रहण-कर्त्ता ही अपने और ब्रह्माण्ड के तत्व को जान सकता है। इस प्रकार वह पंच-भूतों से निर्मित शरीरधारी अपने जीवन काल में सम-सन्तोष-धैर्य-सच्चाई-धर्म में यथा स्थिर रहता है। जिससे सहज ही वह विचार शब्द के साथ जुड़ सजनता अपनाए रखता है और फिर एक अवस्था-एक दृष्टि-एक दर्शन को धारण करते हुए उसमें स्थित रह अपनी जिह्वा-स्वतन्त्र और संकल्प-स्वच्छ बनाए रख सकता है। तभी तो वह कुल ब्रह्माण्ड का चिराग, कुल-दीपक और पर उपकारी कहलाता है। इसी परोपकारी प्रवृति के होने के कारण सबके हृदय में वास कर कुल-दुनियाँ का अज्ञान अंधकार मिटा उसे प्रकाश में खड़ा कर सांसारिक व पारमार्थिक एकता में बाँध देता है। इससे सब सुख और शान्ति को प्राप्त होते हैं और इस प्रकार इस धरती पर सतयुग पुनः लौट आता है।

इसी संदर्भ में सम-सन्तोष-धैर्य-सच्चाई-धर्म आत्मिक शक्ति प्रदान करने वाले जीवन के पाँच प्यारे साथी हैं। इन पाँच प्यारों की यदि हर वक्त अन्दर और बाहर इस संसार और परमार्थ में विचरते हुए एकता ठीक बनी रहे यानि इनका टैम्प्रेचर घटे-बढ़े नहीं तो सजन काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से विमुक्त बेखौफ़ा, बेख़तरा, निर्विकार जीवन व्यतीत कर सकता है क्योंकि ये विकार ही हकीकत में इनकी आपसी एकता भंग कर सजन पर हावी रहते हैं और सजन उनके हानिकारक प्रभावों से प्रभावित हो जीवन व्यतीत करता है। इसलिए इन पाँच प्यारों की आपसी एकता बनाए रखना ही मन की सुख-शांति का हेतु व सर्व हितकारी है। जिस समय भी आपको जीवन के अपने इन पाँच प्यारों की एकता भंग होती नज़र आए तो उस समय अपने स्वभावों की तरफ सुचेत हो जाना और समझ लेना कि दुःख आपके जीवन में आने वाला है। फिर भी यदि आपने इस चेतावनी की ओर ध्यान न दिया, इसको न सुना और अमल नहीं फ़रमाया तो समझना दुःख ने आना ही आना है। इसलिए समय रहते सुख के समय ही इस चेतावनी को समझ लेना और इन पाँच प्यारों की एकता बनाए रखना सुनिश्चित करना। सदा याद रखना कि ये पाँच प्यारे ही आपको अमीरों का भी अमीर बना शहनशाहों के भी शहनशाह बनाने का अमोघ साधन हैं। इनकी परस्पर एकता व समरसता ही आपके बल, बुद्धि के निर्मल होने की हेतु होती है यानि सजन बलवान, धनवान, बुद्धिमान, तीक्ष्ण बुद्धि वाला बन दिव्य-दृष्टि प्राप्त कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बैहरूनी वृत्ति में सजन, सजन-भाव पर परिपक्व हो जाता है और अन्दरूनी वृत्ति में विचार शब्द से उसका संग हो जाता है, जिससे उसकी एक अवस्था बनती है और एक अवस्था बनने से एक दृष्टि हो जाती है। इस प्रकार एक दृष्टि हो जाने से सजन का सीधा सम्पर्क उस एक दर्शन से हो जाता है जिससे ख़्याल इस नाशवान जगत में लिप्त नहीं होता। वह केवल एक दर्शन में ही स्थित रहता है जिससे उसका संकल्प स्वच्छ और जिह्वा स्वतन्त्र हो जाती है। फिर स्वतः उसके हृदय में परोपकारी प्रवृत्ति पनपती है। फिर इधर भी ब्रह्म और उधर भी ब्रह्म अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूँ' आत्मा भी ओही और परमात्मा भी ओही अर्थात् कोई शरीर बाकी नहीं

रहता। यही तो होता है सुरत का कंचन हो उस शब्द रूपी परमात्मा में विलीन हो जाना। इस प्रकार सजन निर्भय हो अनथक परोपकार करता हुआ हर तरफ़ से यश और कीर्ति को प्राप्त होता है। इसलिए सबके लिए उचित है कि वे जीवन व्यवहार के दौरान हर पल हर क्षण इन पाँच प्यारों को जो निज हृदय में व्याप्त हैं अपने आत्मिक बल का भरपूर लाभ उठाने हेतु उनको संगठित रख 'एकता के प्रतीक' बनें।

स्थान : ध्यान-कक्ष भवन-प्रथम तल - बारादरी-निर्गुण द्वार

अब आगे बढ़ो और निर्गुण द्वार पर जो लिखा है उसे ध्यान से पढ़ो वह इस प्रकार है-

निर्गुण द्वार पर अंकित शब्द

- **हम परमधाम में रहते हैं**
- **जोत मेरे साजन जी दी, जग रही महान जी**
- **हो जी चतुर्भुजधारी, हर अन्दर है जोत तुम्हारी**
- **विचार ईश्वर आप नूं मान**
- **मैं ब्रह्म हूँ**
- **निर्गुण**

अब निर्गुण में प्रवेश करो और जानो कि निर्गुण क्या है-

निर्गुण की महत्ता

सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से परे निराकार ब्रह्म निर्गुण कहा जाता है। निर्गुण ब्रह्म का कोई रूप, रंग, रेखा, नाम, विशेषताएँ और इच्छाएँ नहीं होती अर्थात् वह गुणों से रहित माना जाता है। निर्गुण में ईश्वर को अनेक नामों का सम्बोधन प्राप्त नहीं होता अपितु यहाँ तो परमात्मा अपने असली ज्योति-स्वरूप में होता है। निर्गुण में बिन सूरजों इलाही जोत की चमक होती है अर्थात् आद्-अन्त सर्व ब्रह्मांड में उसी का प्रकाश ही प्रकाश होता है जिसके द्वारा कुदरत के सब कार्य चलते हैं और हम उस कुदरत के खेल नज़ारे देख सकते हैं। निर्गुण में उस परमात्मा की शान होती है और सर्गुण में दीवान लगता है। तात्पर्य है कि जहाँ सर्गुण में तरह-तरह के रंगारंग मनमोहक लुभावने नज़ारे होते हैं वहीं निर्गुण में नितांत एकांत होता है।

याद रखो बालअवस्था के भक्तिभाव में विचरने वाली सुरत के लिए चंचलता व मोह के कारण इन नज़ारों की तृष्णा से उबरना जहाँ कठिन होता है वहीं युवावस्था के भक्तिभाव अनुरूप विचरने वाली सुरत के लिए जगत को स्वयं में ही समाहित पाकर इन दृश्यों से उबरना कोई कठिन कार्य नहीं रहता। यही कारण है ऐसी अफुर सुरत संकल्प-विकल्प को छोड़कर एक अवस्था में स्थिर बने रह निर्गुण के एकांतमय वातावरण में, शांतिपूर्वक विचरती हुए निश्चल व आनंदमय बनी रहती है।

इस प्रकार समभाव-समदृष्टि की युक्ति में प्रवीण सजन के लिए सर्गुण-निर्गुण एक समान होता है यानि वह जगत में विचरता हुआ भी निर्लेप अकर्त्ता रूप में बना रहता है क्योंकि संतुष्ट व अभय होने के कारण उसे निर्गुण का एकांत खलता नहीं इसलिए उसकी अन्दरूनी और बैहरूनी वृत्ति में रैहणी-बैहणी कमाल होती है।

वह अपने मन-मन्दिर में सर्वव्यापक भगवान का ही अनुभव करता है। द्वैतवाद को मानने वाले यानि सर्गुण वाले निर्गुण की उपासना बालअवस्था की युक्तिनुसार करते हैं परन्तु जो परमात्मा एक है यानि सर्वव्यापक भगवान के प्रति मान्यता व श्रद्धा रखते हैं उन्हें किसी की आराधना नहीं करनी पड़ती। वे केवल समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अपनाते हुए युवावस्था की भक्ति द्वारा उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल होने व भक्ति प्रबल व शक्ति ताकतवर होने से पूर्णतः बलवान हो जाते हैं। फिर उन्हें किसी अन्य शक्ति को साथ रखने की आवश्यकता नहीं रहती अपितु अफुर अवस्था होने के कारण शक्ति दरबान हो जाती है। इस प्रकार वह जीव कर्त्ता-अकर्त्ता नाम कहाता है और 'ये' शब्द पर परिपक्व हो इलाही श्रृंगार पहन प्रकाश में प्रकाश हो जाता है यानि 'ब्रह्म-स्वरूप है अपना आप' को पहचान निर्वाण पद अर्थात् शून्यता, पूर्णता व मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार उसका तीनों तापों का टैम्प्रेचर जो घटता-बढ़ता रहता है, वह समाप्त हो जाता है।

अब इस कक्ष के अन्दर चारों ओर लिखे हुए संदेश को ध्यान से पढ़ो और अपने असलियत स्वरूप को जानने का यत्न करो ।

निर्गुण कक्ष के भीतर चारों ओर लिखे संदेश

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार
असलियत स्वरूप है जे ब्रह्म,
जैंदा रूप रेखा नहीं रंग।

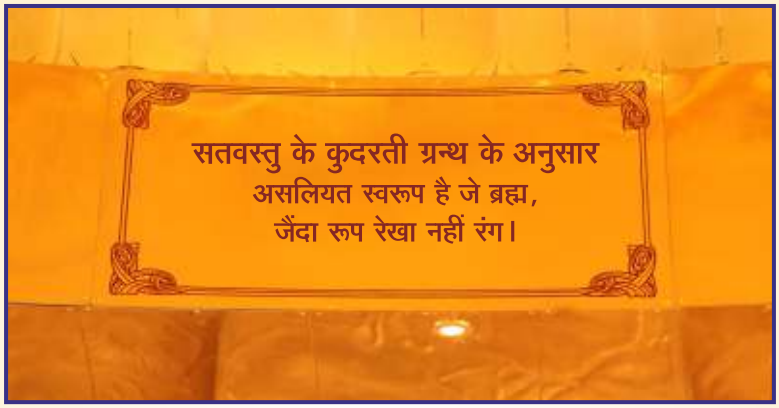

ओ३म् तत्-सत्-ब्रह्म,
स्वरूप मेरा।
ब्रह्म स्वरूप है अपना आप,
हम तो हैं ओही प्रकाश।

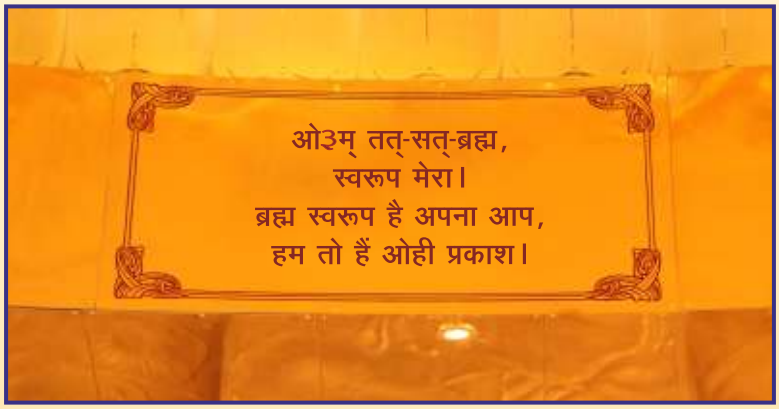

संसार है ओ आत्मा, परमात्मा आधार है,
निराकार आकार ना कोई, है ओ अपरम्पार है।

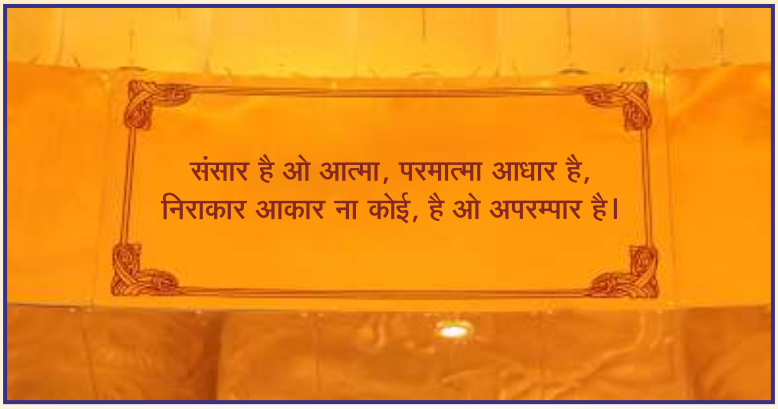

मैं ब्रह्म हूँ।
ओ३म् अमर है आत्मा,
आत्मा में है परमात्मा।

एहो असलियत ब्रह्म स्वरूप प्रकाश,
है जे ओ मेरा अपना।
हम ब्रह्म प्रकाश हम।
हम ब्रह्म प्रकाश हाँ।

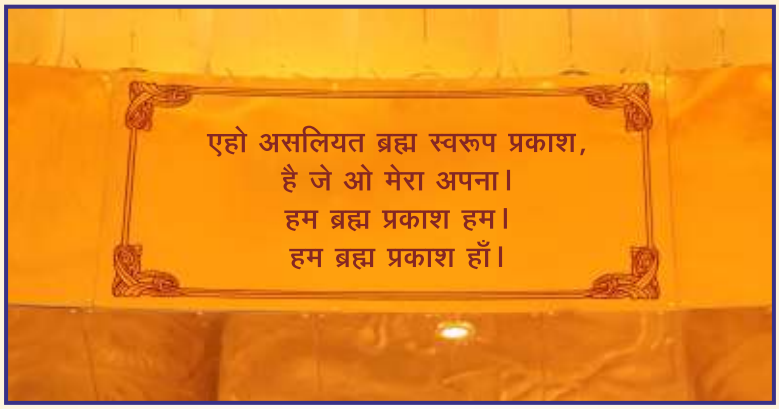

हम हर अन्दर निवास हम।
हम हर अन्दर निवास हाँ।
हम हर अन्दर प्रवेश हम।
हम हर अन्दर प्रवेश हाँ।

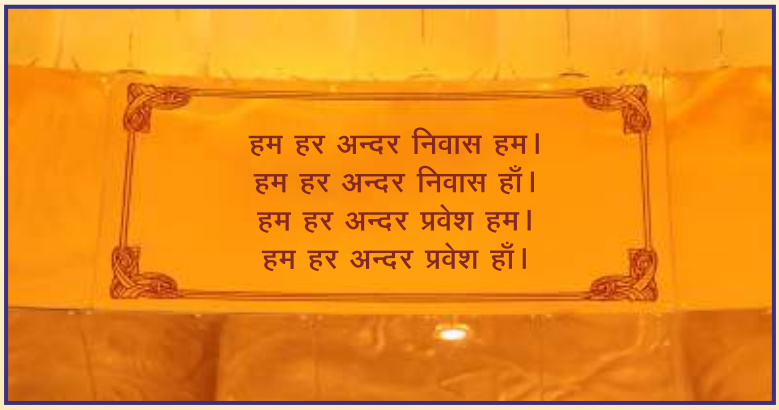

हम हर अन्दर विशेष हम।
हम हर अन्दर विशेष हाँ।

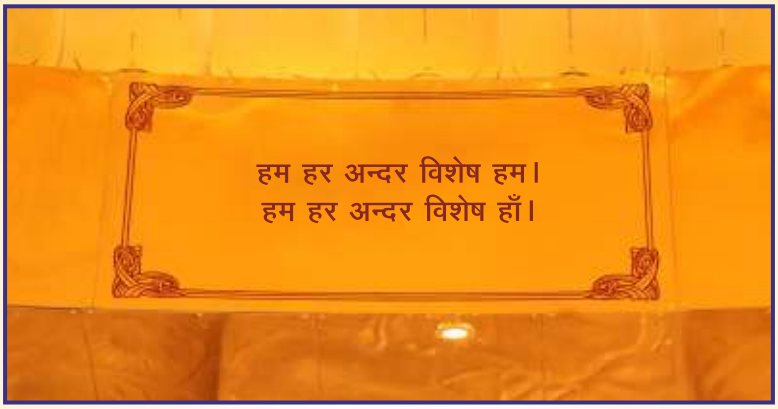

हम ब्रह्म हम।
हम ब्रह्म हाँ।

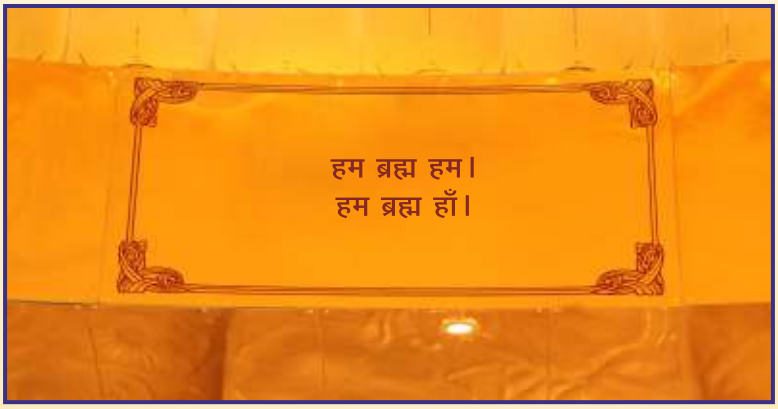

ईश्वर कहते हैं कि
परमधाम है घर हमारा, हम परमधाम में रहते हैं।

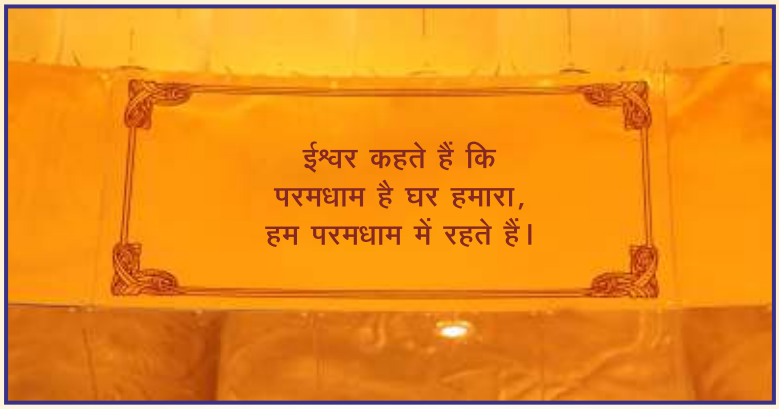

हम सम, संतोष,
धैर्य और विचार हैं।

वैराग्य की डोर द्वारा हम संग जुड़े रह
हमारी सर्वव्यापकता को जानो
और समभाव-समदृष्टि हो सदा अफुर
व आनन्द अवस्था को प्राप्त रहो।

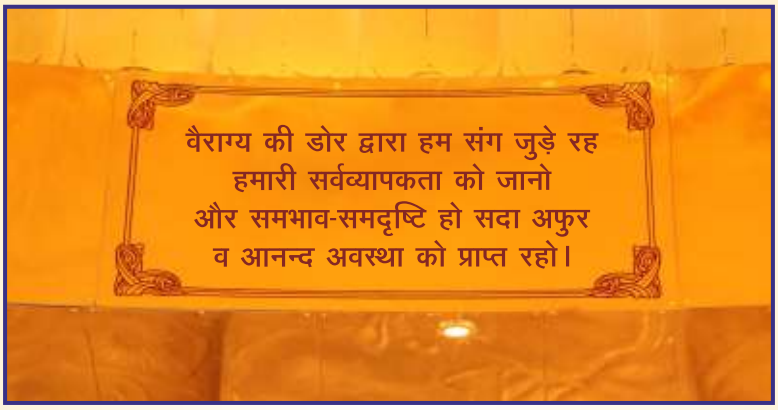

तभी सत्यनिष्ठ और धर्मपरायण बन,
जगत में रहते हुए भी जगत से नर्लेप रह,
अकर्त्ता व निष्काम भाव से फ़र्ज़-अदा व
परोपकार कर पाओगे।

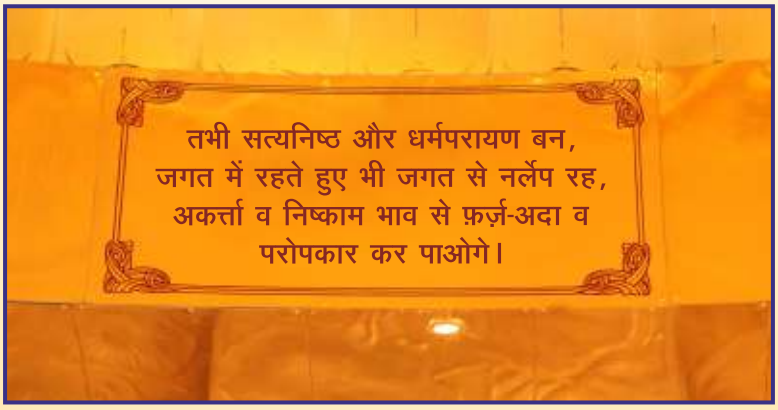

अपने असलियत स्वरूप में स्थित
रहने हेतु सदा अपना ख़्याल ध्यान वल,
ध्यान प्रकाश वल जोड़े रखो।

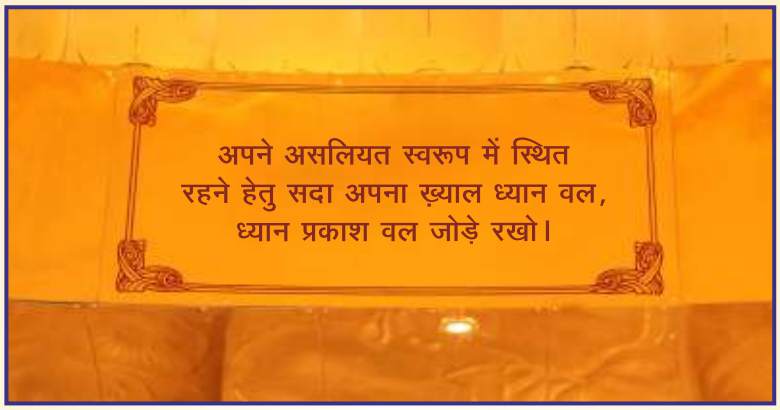

यह है जीव का परमार्थ यानि
कुदरती साइंस का विद्वान बन
अपने असलियत स्वरूप में स्थित रहना।

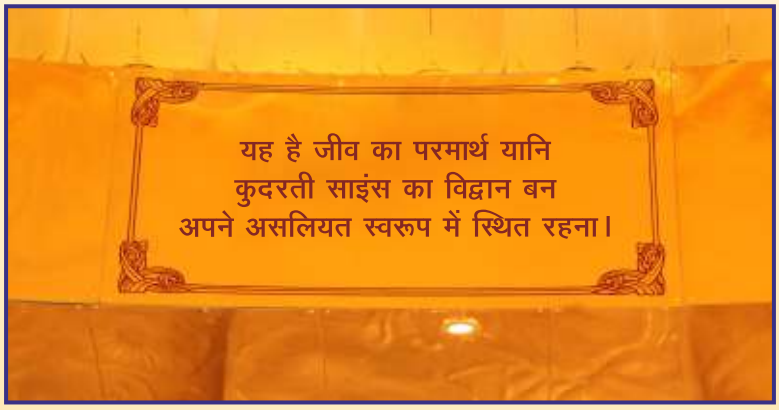

अंततः आवागमन के चक्र
से स्वतंत्र हो, पुनः शांत व विश्राम
अवस्था यानि परमपद को प्राप्त होना।

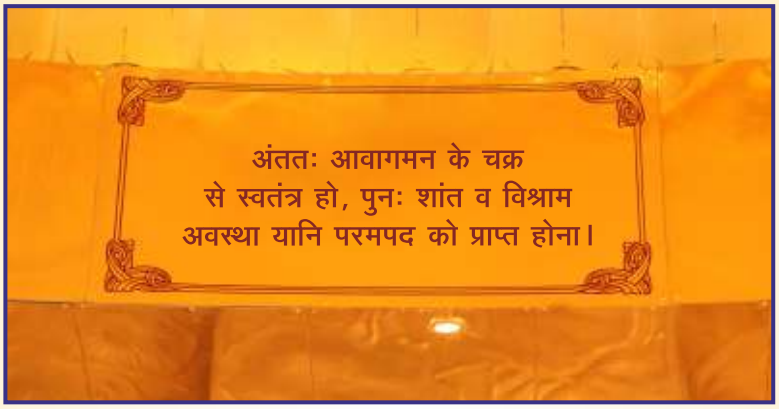

अब चारदीवारी पर लगे हुए फ़रमानों को ध्यान से पढ़ो व उस साजन परमेश्वर की सूक्ष्मता व सर्वव्यापकता के बारे में समझने का प्रयास करो।

निर्गुण कक्ष के भीतर चारदीवारी पर लिखे हुए फ़रमान

1 सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार ईश्वर कहते हैं मैं ब्रह्म हूँ।

2 ब्रह्म पृथ्वी और ब्रह्म ही ओ आकाश हूँ।

3 ब्रह्म सूरज और चाँद ही ओ प्रकाश हूँ ।

4 ब्रह्म जल और ब्रह्म थल रिहा ओ भास हूँ।

5 ब्रह्म पवन और पानी में ही ओ निवास हूँ ।

6 ब्रह्म जनचर और ब्रह्म ही ओ बनचर हूँ।

7 ब्रह्म जड़ और चेतन में ब्रह्म ही ओ निवास हूँ।

8 ब्रह्म नौखण्ड और ब्रह्म ही ओ सारा ब्रह्मांड हूँ।

9 ब्रह्म सर्गुण ब्रह्म निर्गुण और ब्रह्म ही ओ इतिहास हूँ।

10 ब्रह्म सप्तद्वीप और ब्रह्म ही ओ भूमण्डल हूँ।

11 ब्रह्म गगनमंडल में बिन सूरजों ओ प्रकाश हूँ।

12 ब्रह्म रूप रंग न रेखा कोई और ब्रह्म ही ओ आद अंत हूँ।

13 ब्रह्म जगत और जहान सारा ब्रह्म ही ओ प्रकाश हूँ।

14 हम हैं ब्रह्म, तुम हो ब्रह्म।
ब्रह्म स्वरूप ब्रह्मांड सारा।।

15 ईश्वर कहते हैं-
मैं ब्रह्मां दा वी ब्रह्म हूँ।
यानि ब्रह्म है पारब्रह्म परमेश्वर।।

निर्गुण कक्ष के मध्य में प्रकाशित ज्योति की महत्ता

अब इस कक्ष के मध्य में प्रकाशित ज्योति जो ध्यान-कक्ष के सर्वोच्च शिखर पर प्रकाशित आद् जोत का प्रतिबिम्ब है ध्यान द्वारा उससे अपने ख़्याल को जोड़ो और प्रकाश धारण करने का प्रयास कर उसके यथार्थ का बोध करने का यत्न करो। इस क्रिया के पश्चात् अपना ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल स्थिर रखते हुए इसी ज्योति में जोत होने हेतु अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में अपने जीवन के प्रत्येक कदम पर समभाव-समदृष्टि की युक्ति का नीतिनुसार वर्त-वर्ताव सुनिश्चित करने के लिए दृढ़ संकल्प हो जाओ। अब जब आपने ऐसा निश्चय ले लिया है तो ईश्वर अपने ज्योति स्वरूप सत्-चित-आनन्द स्वरूप का कैसे वर्णन कर रहे हैं ध्यान से समझो-

साजन परमेश्वर कह रहे हैं कि 'ज्योति स्वरूप है अपना आप, हम तो हैं ओही प्रकाश' अर्थात् मैं परमात्मा ही ज्योति से परिपूर्ण हूँ और मेरे ही प्रकाश से यह सारा ब्रह्मांड प्रकाशमान हैं। यही मेरी ज्योति ही 'मैं ब्रह्म' का रूप है और आकाशों-आकाश, पतालों-पताल व भूमंडल में ब्रह्म सत्ता के रूप में भासित सब कुछ देखने, जानने व क्रिया करने की चेतन शक्ति है। मेरी इसी ब्रह्म ज्योति से त्रिलोकी जगमगा रही है व सूर्य-चाँद प्रकाशमान है। उसी प्रकाश से ही हर प्राणी अपनी आँख की पुतली के मध्यक बिन्दु द्वारा सब कुछ देख पाता है। वे आगे कहते हैं कि जिस प्राणी का मन इसी 'ज्योति स्वरूप' में सदा लीन यानि 'ख़्याल ध्यान वल, ध्यान प्रकाश वल' रहता है उसके हृदय में 'मैं' अप्रत्यक्ष जब प्रत्यक्ष हो जाता हूँ तो मेरी ही ज्योति के तेज व प्रताप से उसे नित्य ब्रह्म, अनित्य जीव व मायावी जगत के सत्य का बोध हो जाता है। यहाँ उसे अनादि जोत की प्राप्ति हो जाती है और उसका ख़्याल उसी प्रकाश यानि चमत्कार में खड़ा हो जाता है। यही तो उसका समभाव-समदृष्टि की युक्ति यानि युवावस्था की भक्ति द्वारा बल व शक्ति प्राप्त कर अपने असलियत स्वरूप पर खड़ा होना दर्शाता है।

फिर जगत में रहते हुए भी ऐसे पारखी के लिए जगत रहस्यमय नहीं रहता और उसका मन उससे अप्रभावित यानि निर्लिप्त रह सदा सात्विक अवस्था अर्थात् शांत अवस्था में सधा रहता है। यही तो होती है मन की उपशम अवस्था जिसके अंतर्गत संसारी बातों व शास्त्रों का कनरस समाप्त हो जाता है और बाकी कोई संकल्प नहीं रहता। इसी युक्ति या उपाय से ही प्राणी इन्द्रिय निग्रह द्वारा अपने मन की तृष्णा का नाश कर उससे छुटकारा पा सकता है व अपने सभी कष्ट-क्लेशों या विपत्तियों का निवारण कर शांति प्राप्त कर सकता है। तभी तो दिव्य दृष्टि के सबक पर परिपक्व हो ख़्याल गगनमंडल में स्थिर होते ही प्रमादि सर्व-सर्व की जानने वाला त्रिकालदर्शी हो जाता है यानि वज्र अवस्था धारण कर सब फुरनों से आज़ाद हो वह गगनमंडन में जहाँ रूप-रंग रेखा नहीं महाराज जी के साथ मेल खा जाता है। फिर उसके स्वभावों का टैम्प्रेचर घटता-बढ़ता नहीं। इस प्रकार फिर समभाव जो एक निगाह एक दृष्टि देखनी होती है बिना यत्न के

उसकी प्राप्ति हो जाती है। यही तो होता है जन्म की बाज़ी को जीत लेना और संसारी व परमार्थी दोनों राज्य प्राप्त कर अमीरों का भी अमीर हो जाना। इस प्रकार वह अपने जीवनकाल में संतुष्ट, धैर्यवान, सत्यपरायण व धर्मज्ञ बना रह, पहले निष्कामी फिर ब्रह्मज्ञानी पद को प्राप्त कर परोपकारी प्रवृत्ति विशाल हृदय हो जाता है और सदा के लिए रोशन हो जाता है। फिर वह कर्त्ता भी है और अकर्त्ता भी। संसार में विचरता भी है और नहीं भी विचरता। यानि इस ब्रह्मांड में सर्गुण-निर्गुण के खेल देख व समझ कुशलता से खेलता हुआ निर्वाण परमधाम में पहुँच विश्राम को पा जाता है।

आपने ध्यान-कक्ष में प्रवेश करने से पहले इस भवन के शिखर पर जगमगाती जोत से प्रकाशित शंख-चक्र-गदा-पद्म को समरस, शांत व निश्चल अवस्था में देखा। यह शंख-चक्र-गदा-पद्म उस आद् जुगाद जोत, जो ब्रह्म सत्ता के रूप में सर्व ब्रह्मांड में व्याप्त है और चेतन सत्ता कहलाती है, उसी लाइट द्वारा ही धारण किए हुए है।

ईश्वरीय कला के अनुसार निर्वाण ही मुख्यतः सूरजों का सूरज रूपी ब्रह्म प्रकाश पुंज है। वहीं से ही हर तत्व प्रकाश ग्रहण करता है और उसी में ही उसका प्रकाश लीन होते ही वह जीव शांति प्राप्त करता है। तभी तो जब तक मनुष्य का ख़्याल उस ब्रह्म प्रकाश के रूप, रंग, रेखा से रहित निर्गुण अवस्था में स्थित रहता है तब तक वह निर्गुण होने के भाव को अपनाकर हर इच्छा, गुण से विमुक्त रहता है। पर जैसे ही ख़्याल इसके विपरीत साकार सर्गुण ब्रह्म के साथ जुड़ता है तो उसके मन पर परमात्मा के सर्गुण रूप के सत्व, रज और तम तीनों ही गुण अपना प्रभुत्व जमा लेते हैं जिसके फलस्वरूप वह चंचल हो कामनाओं के चक्रव्यूह में इस तरह उलझ जाता है कि अपनी सुधबुध खो इसी जगत में गलतान हो जाता है। यह होता है उस इंसान की पकड़ से अपने यथार्थ सत्यज्ञान छूटना और असत्य मिथ्या ज्ञान धारणा द्वारा अवचेतन या अचेतन अवस्था को प्राप्त होना। हमारे साथ ऐसा न हो आओ हम सर्गुण-निर्गुण में बने सूर्यों के सूर्य के प्रकाश के खेल को इस प्रकार से भली-भाँति समझें-

निर्गुण कक्ष के ऊपर मध्य में प्रकाशित सूर्य की महत्ता

सूर्य हमारे सौर जगत का वह सबसे बड़ा और ज्वलंत पिंड है जिससे भूमंडल समेत सब ग्रहों को ऊर्जा और प्रकाश मिलता है। यह सूर्य ही सब ग्रहों में जो भी घटता है उसका साक्षी होता है और इसी के प्रकाश के माध्यम से ही हर प्राणी अपनी बैहरूनी दृष्टि द्वारा सीमाबंध घटित घटनाओं का साक्षात्कार कर सकता है। फलतः इस लोक अथवा संसार से संबंध रखने वाला अपने मन व बुद्धि अनुरूप लौकिक ज्ञान अपनाकर उसी अनुसार चित्त-वृत्तियों को ढाल अपने मन-वचन-कर्म द्वारा सकारात्मक या नकारात्मक लोक व्यवहार दर्शा यश या अपयश का पात्र बनता है।

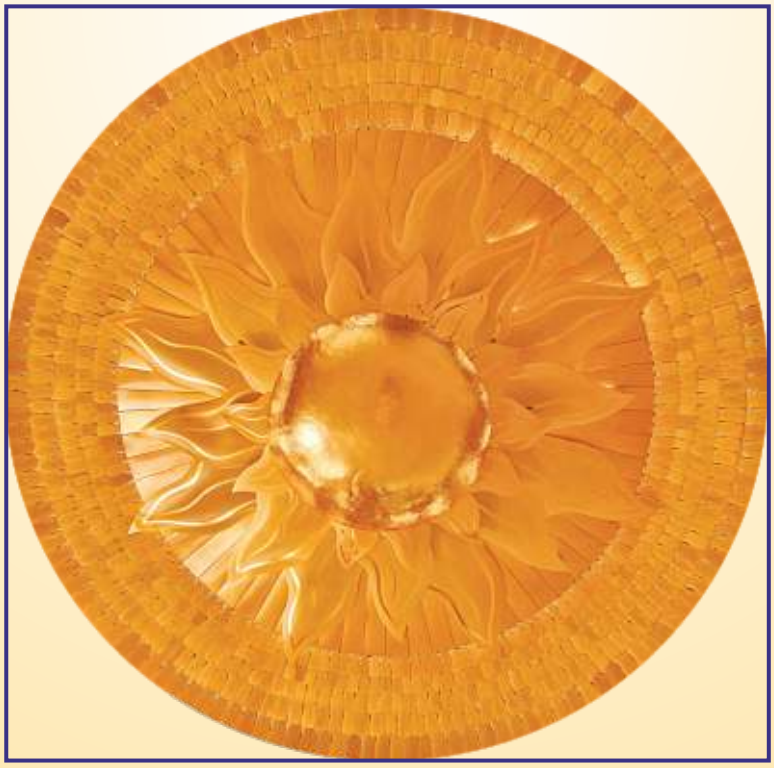

इसी प्रकार अगर हमें आत्मा के विषय में जानकारी लेने हेतु आत्मज्ञान द्वारा 'आत्मा में है परमात्मा' के सत्य का बोध हो जाए तो हम इस रहस्य को समझ जाएँगे कि हमारी आत्मा व इस सूर्य का ऊर्जा व प्रकाश स्रोत वही एक परमेश्वर है। वही हमें हमारी बैहरूनी व अन्दरूनी वृत्ति में अपनी लौकिकता व अलौकिकता का समरस दर्शन करा हमें संतुष्टि प्रदान कर सकता है। इस प्रकार वही हमें अपने ही बल पर सब कार्य करने योग्य यानि आत्मविश्वासी बनाने के साथ-साथ ब्रह्मज्ञान द्वारा आत्मा व परमात्मा की अभेदता का सत्य जना सकता है। तभी तो 'सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ' में कहा गया है कि-

"चार वेद ग्रंथ हैं ओ हृदय, छः शास्त्र तो रोमावली हुआ
रोम रोम विच वेद ही लिखित है, अंग अंग विच एही तो रंगावली हुआ
ग्रंथ वेदों दा जैं जान लिया, चार वेदां नूं जैं पहचान लिया
जैं जीवन बना लिया नगरी ऊपर, उस रौशन अपना नाम किया।"

इस सन्दर्भ में अगर इंसान चाहे तो अपनी निगाह उस परमेश्वर के साथ जोड़कर अपने अन्दर बहुत दूर से ग्रहण करने की शक्ति को भी विकसित कर सकता है। फिर ऐसा विद्वान दूर यानि विस्तार, काल, संबंध आदि के विचार से बहुत अंतर तक की बात सहजता से देखने या समझने में कुशल हो सकता है। इसके अतिरिक्त अगर वह दूरदर्शी चाहे तो इस गुण द्वारा अपना भविष्य वर्तमान में ही देख सकता है और उस पर सोच-विचार कर समाधान ले अपने आप को यथासमय संभाल अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकता है। तभी तो यह सत्य सभी मानते हैं कि केवल दूरदृष्टा ही भविष्य का विचार करने में समर्थ हो सकता है।

यह प्रत्यक्ष चित्त की एकाग्रता यानि चेतना की वृत्ति चेत या हम कह सकते हैं ध्यान जो चित्त की ग्रहण या विचार करने की वृत्ति या शक्ति कहलाता है उस द्वारा होता है। इस हेतु जैसे किसी भी व्यक्ति व वस्तु का यथार्थ जानने के लिए सब कुछ भूलकर उसी तरफ ही ध्यान बाँधना व ख़्याल का लगातार उसी ओर रहना आवश्यक होता है, वैसे ही यह क्रिया उस परमात्मा के प्रति भी करनी आवश्यक

होती है। इस क्रिया द्वारा जब हमारा ख़्याल जगत में विचरते हुए भी अपने घर में यानि मूलकारण परमेश्वर से जुड़ा रहता है तो वह अपने वंश की उच्चता को धारे रखता है और हम उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल कहलाते हैं। तभी तो हमारे अन्दर ईश्वरीय चाल-ढाल का ज्ञान सदा-सदा बना रहता है और हमारे लिए वैसे ही भाव-स्वभाव अनुरूप ढलना कोई कठिन कार्य नहीं रहता। क्योंकि जब जीव अपने असलियत स्वरूप में बने रह इस जगत में विचरता है तो इस जगत का कुछ भी उसको मोहित या वश में नहीं कर सकता। तभी तो वह अपने जीवनकाल में सदा निष्कलंक रह अपना घर आबाद कर पाता है। इस प्रकार वह ध्यान की स्थिरता द्वारा अपनी सुरत को शब्द गुरु के माध्यम से परमेश्वर में जोड़े रखता है और फिर जीवन में जो भी प्राप्त करता है उसी परमेश्वर से ही प्राप्त करता है।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में इस युक्ति का वर्णन इस प्रकार है-

"ख़्याल जदों अपने घर विच राहवे तदों जीव विश्राम नूं पावे
जेहड़े इन्सान यत्न करन, यत्न करन।
ख़्याल जदों अपने घर विच राहवे, इन्सान ध्यान इस्थर हो जावे
संग लक्ष्मी चतुर्भुजधारी दा दर्शन पावे,
कोई विरले दर्शन करन, दर्शन करन।
केहड़े रस्ते जाना सी सजनों, केहड़े रस्ते जाय चढ़े
घर दा रस्ता भुल के ते, दूसरे शहर विच जाय वड़े जाय वड़े।।"

इस प्रकार जीव स्थिर ध्यान दृष्टि द्वारा सूर्यों के सूर्य परमेश्वर के प्रकाश को ग्रहण कर अपने अलौकिक स्वरूप को पढ़ने व समझने के काबिल हो विश्राम को पा जाता है। तभी हमारे अंतर्दिव्य चक्षु दिव्यता का भाव हृदय में जाग्रत करते हैं जिससे हमारे विचारों, आचार व व्यवहार में ईश्वरीय सुंदरता, उत्तमता व सुशीलता पनपती है। इसके अतिरिक्त हम दिव्यदर्शी हो अलौकिक पदार्थों को देखने योग्य बन जाते हैं।

यही अलौकिक दृष्टि दिव्य दृष्टि कहलाती है जो अपने आप में बहुत दूर के या

छिपे हुए पदार्थों या बातों को देखने और समझने की शक्ति रखती है। इस प्रकार हमारे लिए जीव, जगत व ब्रह्म के यथार्थ को जानना सहज हो जाता है। तभी हमारे अवयव यथा आत्मा, बुद्धि, मन, चित्त व शरीर संगठित रूप से नियमबद्ध कार्य कर सकते हैं और हमारी विचारशक्ति स्थिरता व प्रबलता से कार्य करना आरम्भ कर सकती है फलतः हम उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो जाते हैं।

फिर किसी भी प्रकार से मायावी कल्पनाशक्ति द्वारा शुद्ध अंतःकरण में नई और अनूठी वस्तुओं के स्वरूप उपस्थित कर, किसी प्रकार की भी उद्‌भावना पैदा करना असंभव हो जाता है। तात्पर्य यह है कि तब निर्मल बुद्धि द्वारा हमारे अवयवों का संचालन होने के कारण मन व चित्त वृत्तियाँ शांत रहती हैं और 'मैं-तूं' का सवाल भी पैदा नहीं होता। इस प्रकार स्थिर उच्च बुद्धि उच्च ख़्याल द्वारा भले-बुरे की पहचान करने वाला विवेकशील, मन-वचन-कर्म द्वारा केवल सजन-भाव अपनाकर धर्मात्मा कहलाता है। इसलिए तो 'सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ' में कहा गया है कि -

"जद नैन जुड़े साडे नैनां दे नाल,
फिर कई सूरजां दा सूरज चढ़ पवेगा
फुरने दी सृष्टि वल्लों हो जावनगे आज़ाद।।"

अंततः हम कह सकते हैं कि दिव्य दृष्टि के सबक अनुसार 'एक निगाह एक दृष्टि एक दृष्टि एक दर्शन' में स्थित रह ऐसा सजन जनचर-बनचर और जड़-चेतन में एक दर्शन होने का सत्य जान आजीवन मौज उड़ाता है और सहजता से इस भवसागर से पार हो जाता है।

आओ अब निर्वाण जहाँ जीव शून्यता को प्राप्त हो इस तरह से निश्चल व शांत हो उस सूर्यों के सूर्य परमेश्वर की जोत में अस्त हो अपने घर परमधाम में पुनः प्रवेश कर जाता है और मोक्ष को पा आवागमन से रहित हो जाता है उस निर्वाण व परमधाम दोनों के बारे में क्रमशः इस प्रकार जानें-

निर्वाण

निर्वाण का अर्थ है समाप्त हो जाना यानि शून्यता को प्राप्त हो जाना। किसी उदित तत्व का पुनः अपने स्रोत में मिल पूर्णता को प्राप्त होना अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा के संगम या संयोग उपरांत जीवात्मा का उसी में ही लोप हो अदृश्य होते ही रूप, रंग, रेखा मिटा आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाना। जीवात्मा का इस प्रकार निर्मल, शांत और निश्चल अवस्था को प्राप्त होना ही उसके अपने असलियत स्वरूप में स्थित होने का परिचायक होता है। इसी सन्दर्भ में जन्म-मरण के चक्कर से आज़ाद होने के लिए जीवात्मा को निर्वाण पद की प्राप्ति का महत्त्व जनाते हुए ईश्वर कहते हैं कि अगर इस उपाधि से छुटकारा पा यथार्थ को जानना चाहते हो तो ख़्याल ध्यान वल और ध्यान निर्वाण के अन्दर चमक रही जोत के प्रकाश वल जोड़े रखो।

यही एकमात्र युक्ति है मुझे और मेरे इस जगत रूपी खेल को जानने की और सब कुछ करते हुए भी अकर्त्ता यानि इस जगत में विचरते हुए इससे निर्लिप्त व तृप्त बने रह मुझ ज्योति में जोत हो जाने की। याद रखो यह ही जीवात्मा की अफुर व विश्राम अवस्था कहलाती है अर्थात् जीवात्मा सुगमता से निष्काम रास्ता अपनाकर अपने असलियत स्थान को पा उस महान पद को प्राप्त कर लेता है जिसे आत्मपद कहते हैं। यह भी जान लो कि निर्वाण ही ऐसा सूक्ष्म स्थान है जहाँ से इस ब्रह्मांड का उदय होता है और जिसमें पुनः यह ब्रह्मांड अस्त हो जाता है। तभी तो ईश्वर कहते हैं -

"शेष ते हाँ विराजमान, निर्वाण दे अन्दर स्थान मेरा।
चमक रहा हूँ सारे भूमण्डल, हर अन्दर रोशन नाम मेरा।
सर्गुण मुख मेरे मुरली साजे, निर्गुण चमक दिखावां मैं।
जोत जगे मेरी सब जग अन्दर ओ खेल नज़ारे दिखावां मैं।।"

यह निर्वाण ही है जहाँ आद् जोत दिन और रात जगमगा रही है और यही जोत चारों दिशाओं को प्रकाशित कर रही है। यहाँ तक कि सूरज-चाँद और हर एक के मन-मन्दिर में भी इसी आद् जोत का प्रकाश है। यह ही ब्रह्म का स्थान है जहाँ ब्रह्म और जीव अभेद होते हैं और यहीं से ही ब्रह्मसत्ता का प्रवाह चलता है जिसकी ताकत द्वारा जनचर-बनचर, जड़-चेतन सक्रिय हो उठते हैं।

याद रखो निर्वाण पद प्राप्ति हेतु शब्द विचार पकड़ अपने आप की पहचान कर ख़ालिस सोना होना होगा। अन्दरूनी और बैहरूनी वृत्तियाँ सम रख अपने फ़र्ज़-अदा की तरफ़ से जीत सुनिश्चित करनी होगी। तभी तो हर अन्दर अपना ही प्रकाश जगमगाता नज़र आएगा और अजपा जाप द्वारा अफुरता, अडोलता व आनन्द अवस्था बनेगी। ऐसी प्रकाशित जीवात्मा का हृदय निर्मल व विशाल हो जाता है और वह अपने असलियत स्वरूप यानि शब्द में स्थित हो विश्राम अवस्था को प्राप्त हो जाती है।

परमधाम

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार-

"परमधाम परमेश्वर रैहंदा, ओ परमधाम जगमग जगे महान
जगमग ओही प्रकाश, ओ प्रकाश है जे कुल जहान
परमधाम दा नज़ारा है जे ओ जग सारा
ओ परमधाम ओ परमधाम कैसा लगे प्यारा।"

सर्गुण-निर्गुण-निर्वाण का मालिक जो सबका पालनहार है वह सच्चिदानन्द, सच्ची सरकार और सिरजनहार अपने घर परमधाम में रहता है। यहाँ परम का अर्थ है जिसके आगे या अधिक और कुछ न हो तथा जो सर्वोच्च हो और धाम का अर्थ है रहने का स्थान। इस प्रकार परमधाम उस आद् ज्योति स्वरूप, परब्रह्म परमेश्वर का शोभा स्थल है।

जब सुरत सूक्ष्म अन्दर यानि निर्वाण पहुँच परमधाम की सीढ़ी चढ़ना आरम्भ करती

है तो जीव का हृदय प्रकाशमान हो उठता है और इलाही सिंगार पहन उसका नाम रोशन हो जाता है। यहाँ सुरत को बोध हो जाता है कि सारा भूमंडल उसी के प्रकाश से जगमगा रहा है। सुरत का परमधाम पहुँचना अपने स्थान को पाना होता है यानि खुद परमपद प्राप्त करने के साथ-साथ कुल सगली को तारने का परोपकार करना तब उसका परम कर्त्तव्य हो जाता है।

यही निष्काम रास्ता जीव को ब्रह्म का बोध करा उसे स्वयं ब्रह्मा का भी ब्रह्म होने का सत्य जना देता है। तभी तो कहा गया है कि एक भाव में स्थित व स्थिर बने रहने हेतु कुल दुनियाँ सर्वव्यापक भगवान अर्थात् विराट् ईश्वर के यथार्थ को मानते हुए अपना फ़र्ज़ अदा हँस कर करो और धारण किए हुए द्वि-द्वेष जैसे कुत्सित भावों पर विजय पा एक ख़्याल, एक दृष्टि, एक दृष्टि, एक दर्शन हो जावो।

याद रखो कि जहाँ आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने के उपरांत संतोष, धैर्य, सच्चाई के सवाल हल कर, सुरत जोत में जोत हो निर्वाण में जगमगा उठती है वहीं आत्मिक ज्ञान की गुढ़ाई यानि विचार शब्द द्वारा उसका अपना अस्तित्व अर्थात् रूप-रंग-रेखा मिट जाता है और वह परमधाम पहुँच सर्व प्रकाशित व बेअंत-बेअंत कहलाती है।

यह अवस्था विचार ईश्वर आप नूं मानने यानि ईश्वर है अपना आप प्रकाश, ईश्वर है अजपा जाप की द्योतक है। तात्पर्य यह है कि फिर उसे शक्ति-लक्ष्मी के रूप में किसी अन्य सहायक की आवश्यकता नहीं रहती और वह अपने आप को परिपूर्ण पा स्वतन्त्र रूप से अपने जीवन-लक्ष्य परमधाम को प्राप्त हो जाता है।

इसी सन्दर्भ में परमधाम पहुँचने का सुगम मार्ग है समभाव-समदृष्टि की युक्ति द्वारा अपने आप की पहचान कर अपना नाम रोशन करना। फिर समभाव जो एक निगाह एक दृष्टि देखनी होती है बिना यत्न के उसकी प्राप्ति हो जाती है। यह है जन्म की बाज़ी को जीतना यानि जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-ग़मी, मान-अपमान, अमीरी-ग़रीबी में सम बने रहना।

अंततः जानो कि परमधाम चढ़े हुए हज़ारों सूरजों का चानणा है और उसी की रौशनाई का प्रकाश सर्व-सर्व फैला हुआ है। वहाँ बिन सूरजों उजियाले के प्रभाव से सुरत त्रिकालदर्शी हो अनुपम प्रसन्नता व आनन्द की अनुभूति करती है। यह सुहावनी चमक का नज़ारा अत्यंत प्यारा लगता है क्योंकि यहाँ जग अन्दर चमक रहा सिरजनहारा कोई रहस्य की बात नहीं रहती। तभी तो ईश्वर कहते हैं -

'आद् अन्त प्रकाश हमारा, परमधाम बिन सूरजों चमकारा,
हम प्रकाशित हैं-हम प्रकाशित हूँ, प्रकाश है हमारा हम प्रकाशित हूँ।"

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार - परमधाम में परमेश्वर यानि कुदरत के वाली रहते हैं और वही सबसे पवित्र स्थान है। यहाँ कोई विरला ताकतवर जीव ही पहुँच सकता है। जानो जहाँ परमधाम कुदरत के वाली चमकते हैं और उसी से निर्वाण में जोत जगमगाती है, वहाँ निर्गुण में एक रूप निगाह आते हैं और सर्गुण में वही एक रूप हर अन्दर सुहाता है यानि सर्वव्यापक भगवान के विराट् रूप के दर्शन हो जाते हैं।

अंततः याद रखो अगर ख़्याल सर्गुण के भक्ति-भाव अपनाता है तो उसका बिखरना निश्चित होता है और इस प्रकार उसका अपने सूक्ष्म घर निर्वाण-परमधाम में स्थित रहना असंभव हो जाता है क्योंकि वह द्वि-भाव में इस तरह से गलतान हो जाता है कि निर्गुण का एकांत उसे खलता है। इसके विपरीत अगर ख्याल निर्गुण ब्रह्म का भाव अपनाता है तो समभाव-समदृष्टि की युक्ति यानि सजन-भाव के वर्त-वर्ताव द्वारा वह सहजता से निर्वाण-परमधाम में प्रवेश कर परमपद प्राप्त कर विश्राम पाता है। अतः सजनों अखंड शांति व विश्राम पाने हेतु समभाव-समदृष्टि की युक्ति यानि सजन-भाव की पढ़ाई करने के लिए सब तत्पर हो जाओ जी व इस हेतु अपनी वसुन्धरा आओ जी।

ध्यान-कक्ष अर्थात् समभाव-समदृष्टि के स्कूल का संदेश

अब जब आप समभाव-समदृष्टि के स्कूल में समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन-भाव का सुचारु ढंग से वर्त-वर्ताव करने हेतु पढ़ाई व गुढ़ाई करने की विधि समझकर जा रहे हो तो आप सबको जो सब ग्रन्थों में बालअवस्था व युवावस्था की युक्तियों का वर्णन है उनमें से कौन सा भक्ति-भाव अपनाने का संदेश दोगे और क्यों दोगे?

'मैं सबको बताऊँगा कि जो-जो कुदरती ग्रन्थ और पुस्तकें युग-युग में आ रही हैं उन ग्रन्थों में दो भक्तियाँ लिखी हुई हैं। एक तो है बाल अवस्था की युक्ति और भक्ति और दूसरी है युवा अवस्था की युक्ति और भक्ति। इन दोनों भक्तियों की कोई विरला सजन पहचान कर सकता है। बाल अवस्था की भक्ति है नाम चलाना और ध्यान लगाना। यह बुद्धि थोड़ी अनजानपने के कारण नचनी टपनी

होती है। युवा-अवस्था की भक्ति है, समभाव-समदृष्टि की युक्ति। इस में एक तो बल की प्राप्ति होती है और दूसरा शक्ति ताकतवर हो जाती है। इस युक्ति के कुशलतापूर्वक प्रयोग द्वारा हमें अपने संकल्प कुसंगी को संगी बनाना आवश्यक होता है क्योंकि 'कुसंग हमारा कोई भी नहीं, कुसंग हमारा संकल्प ही है।' ऐसा होने पर संतोष, धैर्य और सच्चाई, धर्म के सवाल हल हो जाते हैं और सम का कोई सवाल नहीं रहता यानि "विचार ईश्वर है अपना आप" का सत्य बोध हो जाता है। यही तो होती है नौजवान युवा-अवस्था जो उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल, भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर होने का यानि हृदय में सतवस्तु छा जाने का प्रतीक होती है। इस संदर्भ में यह सत्य तो सर्वविदित है कि सतवस्तु में संकल्प नहीं होता इसलिए तो एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन होता है। यही तो हर जीव की आवश्यकता है ताकि वह अपने जीवनकाल में सहजता से इस जगत में तृप्त व निर्लिप्त विचरते हुए विजयी हो।

इसी सत्य ज्ञान धारणा को ध्यान में रखते हुए मैं सबसे करबद्ध प्रार्थना करते हुए कहूँगा कि-

विचार ईश्वर आप नूं मान।
अवविचार ईश्वर इक जान।।

विचार इक अपना आप ही मान।
अवविचार कुल दुनियां जान।।

विचार करो है ईश्वर अपना आप।
अवविचार ईश्वर है इक साथ।।

ईश्वर है अपना आप प्रकाश।
ईश्वर है जे अजपा जाप।।

अतः इस यथार्थ को जानने व जनाने हेतु मैं सबको इस सत्य से परिचित कराऊँगा कि इस समभाव समदृष्टि के स्कूल द्वारा मुझको पहले आध्यात्मिक

शिक्षा द्वारा विद्या अभ्यास करा जीवन कला में विधिवत् दक्ष बनाया गया। फिर उस विद्या के गूढ़ अर्थ समझाकर उन अर्थों को जीवन में शत्-प्रतिशत् सत्यता से उतारने के योग्य बनाने के लिए 'समभाव-समदृष्टि की युक्तिनुसार' सजन-भाव अपनाने हेतु अपना आत्मनिरीक्षण कर निज का यथार्थ बोध करने को कहा। इस तरह इस क्रिया द्वारा इस सिद्धान्त को अपनाने के प्रति मेरा विश्वास सुदृढ़ करते हुए यह सत्य जनाया गया कि आत्मा और परमात्मा अभेद हैं। यह था आत्मा के स्वरूप का ज्ञान करा मेरे मन को अविद्या अथवा माया नामक वृत्ति से आज़ाद रखना। इस द्वारा मैं अपने अंतर्निहित दुर्जनता को पहचान पाया और अपने आप को सजनता अपनाने के प्रति विश्वस्त कर पाया।

अब मैं अपने मन में उठने वाले भावों के धर्म के सत्यासत्य का ज्ञान करने की कला अथवा विद्या में निपुण हो अच्छे भाव-स्वभाव अपनाने के योग्य हो चुका हूँ। इसलिए अब न ही मुझे मौत का भय सता सकता है और न ही यह जगत मेरे मन को अपनी माया में लिप्त कर मुझमें अतृप्ति का भाव जगा सकता है। अब मैं निश्चयात्मक बुद्धि निर्भय होकर अपने जीवन का लक्ष्य इसी जीवन में पाने में ख़ुद को समर्थ समझता हूँ। अब मैं अपने आप को इतना शक्तिशाली मानता हूँ कि मुझे इस जगत की माया रूपी आकर्षण शक्ति तुच्छ प्रतीत होने लगी है यानि मैं यह सत्य जान गया हूँ कि इस जगत के लिए अब मुझ पर विजय पाना असंभव है।

अतः अब मैं सबको बताऊँगा कि मुझे सजन भाव द्वारा सबके साथ अच्छा, प्रिय तथा उचित व्यवहार करने वाला बनाने हेतु तैयार कर सजाया गया व सदा उसी प्रकार सजे रहने का भाव इस तरह से भरा गया कि यह सजन भाव फिर मेरे से कभी अलग न हो सके और इस प्रकार मैं आत्मिक ज्ञान द्वारा प्राप्त आत्मीयता से इस जगत में विचर सकूँ।

ऐसा ही हो उसके लिए जो युक्तिसंगत क्रिया बताई गई वह इस प्रकार है-

मुझे बताया गया कि 'मैं' एक मानव हूँ जो सबमें सजने वाले सज्जनता के पुंज साजन परमेश्वर की कृपा से मानव चोला प्राप्त कर इस जगत में आया हूँ। मेरी सुरत यानि ख़्याल वह शक्ति है जो जिसके संग जुड़ती है उसी को ही धारण कर अपने वर्त-वर्ताव मे यानि मन-वचन-कर्म में उतारती है। इस प्रकार इस 'मानव' का सजन होना या दुर्जन होना निर्भर करता है उसके ख़्याल का ध्यान शक्ति द्वारा अपने शब्द रूपी साजन पति परमेश्वर के साथ जुड़े रह वह सब धारण करना जिस सत्य ज्ञान से उसका मन उपशम हो यानि सब क्लेशों से मुक्त होकर हर घड़ी हर क्षण ईश्वर के ध्यान में मग्न रहे। यही होती है समाधि अवस्था जब ख़्याल परमात्मा में निमग्न व तन्मय होता है और इंसान अपने आपको भूलकर सब ओर ब्रह्म ही ब्रह्म देखता है और सजन-पुरुष कहलाता है। अन्यथा इसके विपरीत जब ख़्याल इस हितकर क्रिया द्वारा सत्य धारणा करने में अपने आपको असमर्थ पाता है तो इसका अर्थ होता है उसके ख़्याल का परमेश्वर से विमुख हो अपने असली घर से भटकना और इस मायावी जगत के साथ जुड़ आवागमन के चक्रव्यूह में फँसे रहना। यह भोग उसे अपनी दुर्जनता के कारण भोगना पड़ता है। इस दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति से उबर अब मैं सर्व एकात्मा का सत्य हृदय में धारण कर स्वयं को नीतियों के अनुसार अकर्त्ता भाव से इस जगत में विचरने के योग्य पाता हूँ।

अंततः मैं सबसे यह कहते हुए गर्व का अनुभव करता हूँ कि मेरे हृदय से अब कलुकाल छँट गया है और सतवस्तु का प्रवेश हो चुका है। तभी तो अब सतयुग दर्शन शंख-चक्र-गदा-पद्मधार मेरा साजन परमेश्वर मेरे हृदय में प्रगट है। अब मैं सर्वहित के लिए कह सकता हूँ कि -

ध्यान-कक्ष यह ध्यान-कक्ष।
सबका साँझा ध्यान-कक्ष।।
सतयुग की पहचान है यह।
मानवता का स्वाभिमान है यह।।

समभाव-समदृष्टि के स्कूल का पाठ्यक्रम

अंततः जान लो कि इस स्कूल में आत्मिक-ज्ञान द्वारा परस्पर सजन-भाव के वर्त-वर्ताव की पढ़ाई व गुढ़ाई करवाई जाएगी। इस हेतु इस स्कूल में पढ़ाई जाने वाली विद्या अर्थात् परम-पुरुषार्थ की सिद्धि कराने वाले ज्ञान का एक निर्धारित पाठ्यक्रम होगा जिसके अनुसार यहाँ पर बिना किसी भेदभाव यानि रंग-भेद, जाति-पाति, अमीरी-गरीबी यानि वड-छोट के हर आयु-वर्ग के इच्छुक सजनों की कक्षाएँ उनकी सुविधानुसार नियमित रूप से लगाई जाएँगी।

इस अनूठे पाठ्यक्रम का विशिष्ट उद्देश्य होगा युवा अवस्था की भक्ति अर्थात् 'समभाव-समदृष्टि की युक्ति' के अनुशीलन में प्रवीणता प्रदान कर उन्हें वृत्ति-स्मृति की निर्मलता द्वारा उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल बना सदाचारी बनाना।

इस हेतु समभाव-समदृष्टि के इस स्कूल से -

- 'विचार ईश्वर आप नूं मान' के सत्य का युक्तिसंगत बोध करा 'ईश्वर है अपना आप प्रकाश' इस तथ्य का बोध कराया जाएगा।
- 'शब्द है गुरु, शरीर नहीं' इस तथ्य से परिचित करा निमित्त के स्थान पर नित्य को व ज्ञानी के स्थान पर ज्ञान को अपनाने के योग्य बनाया जाएगा।
- अपने नित्य स्वरूप से जुड़े रह हकीकत में सर्वत्र अपनी ही ब्रह्म सत्ता के व्याप्त होने का बोध कराया जाएगा।
- सजन-भाव को वर्त-वर्ताव में लाने के तरीके बताए जाएँगे।
- परस्पर सत्य व्यवहार व वार्तालाप द्वारा एक दूसरे को उत्थान के पथ पर अग्रसर करने के लिए प्रेरित किया जाएगा।
- ब्रह्म वृत्ति व ब्रह्म स्वरूप को चरितार्थ करने की युक्ति बताई जाएगी।
- हर परिस्थिति व अवस्था में मन को शांत व स्थिर रखते हुए एक रस सम में लीन रहने के योग्य बनाया जाएगा।

- समूलतः निर्विकारी बने रहने के लिए समचित्तता का पाठ पढ़ाया जाएगा ताकि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसे विकार हृदय में घर न कर पाएँ।
- समवृत्ति धारण करने के लिए जितेन्द्रिय बनना सिखाया जाएगा।
- अफुरता हेतु बैहरूनी व अन्दरूनी दोनों वृत्तियों की निर्मलता सुनिश्चित करने के तरीके बताए जाएँगे।
- हर क्षण ध्यान द्वारा अपने ख़्याल पर पहरा देने की विधि समझाई जाएगी।
- कार्यव्यवहार करते हुए हर क्षण अपने ख़्याल को प्रभु के साथ जोड़े रखने की यानि एक ख़्याल हो एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन हो जाने की युक्ति का बोध कराया जाएगा।
- संकल्प पर फ़तह पा दिव्य दृष्टि का सबक लेकर आवागमन से मुक्त होने का तरीका बताया जाएगा।

इसके अतिरिक्त इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल से सजनों को सतयुग की आद् संस्कृति के विषय में बताते हुए उसका अनुगमन करने यानि अपने आचार-विचार व व्यवहार में ढालने के लिए प्रेरित किया जाएगा ताकि वे समय रहते ही अपना जीवन बना सतयुग में प्रवेश पा सकें।

स्पष्ट है कि समभाव-समदृष्टि के इस स्कूल को खोलने का मुख्य मकसद हर मानव को अपने जीवन के प्रधान उद्देश्य के प्रति जाग्रत कर अपनी चेतन शक्ति द्वारा उसकी प्राप्ति के प्रति युक्तिसंगत प्रेरित करना है ताकि उसके ख़्याल व ध्यान में उसके जीवन-लक्ष्य की जानकारी बनी रहे। निःसंदेह इस कौशल में दक्षता द्वारा हर मानव की बुद्धि प्रकाशित हो उठेगी और वह अपने असली तत्व यानि 'आत्मा में है परमात्मा' का बोध कर सकेगा।

यही नहीं धर्म विमुख हो चुकी मानव जाति को धर्म के मार्ग पर अग्रसर कर पुनः सबके हृदयों में धर्म की स्थापना करने का आज जब कोई विकल्प नहीं नज़र

आ रहा है तो ऐसे में समभाव-समदृष्टि के अनुशीलन द्वारा किया जाने वाला यह प्रयास धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जैसे परम पुरुषार्थों को सिद्ध कर चहुं ओर एकता, शांति व आनंद का वातावरण निर्मित करने में अवश्य सहायक व सफल होगा।

इसके अतिरिक्त सबकी जानकारी हेतु यह कार्य कुदरत का है और मानव उत्थान से संबंधित है। अतः इस अनूठे स्कूल में प्रवेश प्राप्ति के लिए कोई आयु-सीमा व फ़ीस इत्यादि का सवाल नहीं होगा अपितु जो सजन सीस अर्पण कर यानि अपने हर ज्ञानाज्ञान-विज्ञान का परित्याग कर, केवल ईश्वर के आदेश को एवं उसके संविधान को जो कि समभाव-समदृष्टि की युक्ति का अनुशीलन है, अपने जीवन में उतारने हेतु तत्पर होगा, वह इस स्कूल में प्रवेश पा सकेगा।

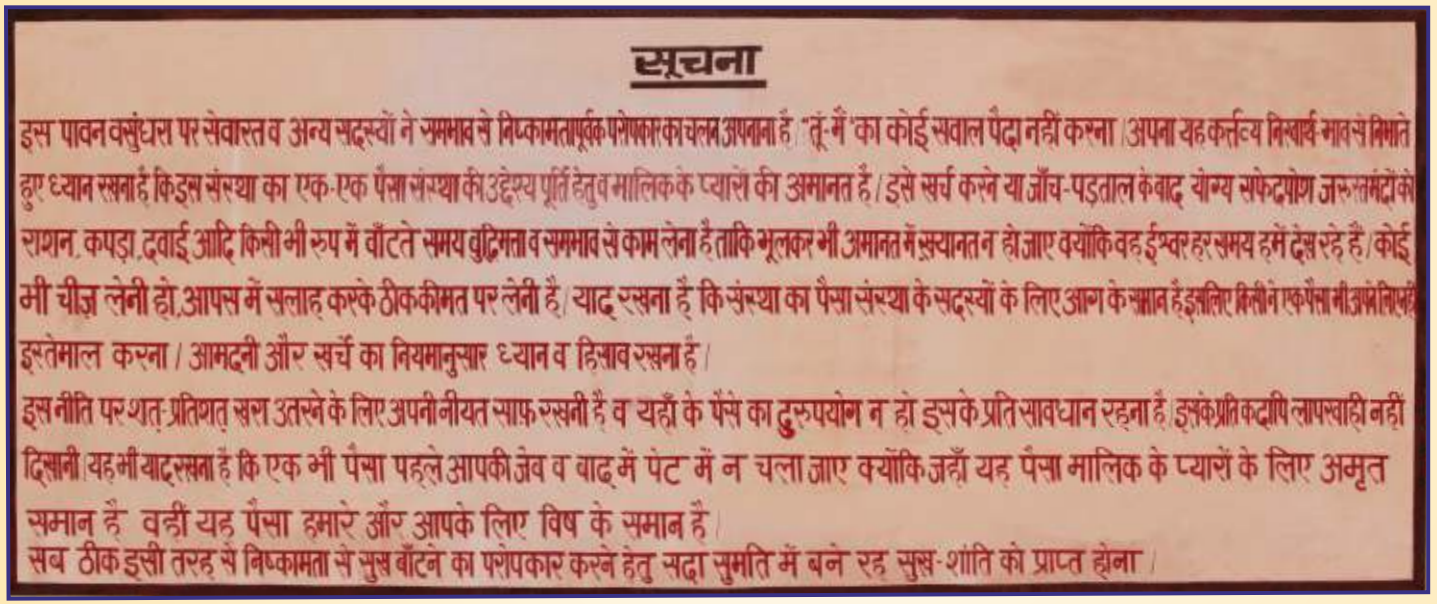

सूचना
इस पावन वसुंधरा पर सेवारत व अन्य सदस्यों ने समभाव से निष्कामतापूर्वक परोपकार का चलन अपनाना है "तूं-मैं" का कोई सवाल पैदा नहीं करना। अपना यह कर्त्तव्य निस्वार्थ-भाव से निभाते
हुए ध्यान रखना है कि इस संस्था का एक-एक पैसा संस्था की उद्देश्य पूर्ति हेतु व मालिक के प्यारों की अमानत है। इसे खर्च करने या जाँच-पड़ताल के बाद योग्य सफेदपोश जरूरतमंदों को
राशन, कपड़ा, दवाई आदि किसी भी रूप में बाँटते समय बुद्धिमता व समभाव से काम लेना है ताकि भूलकर भी अमानत में ख़यानत न हो जाए क्योंकि वह ईश्वर हर समय हमें देख रहे हैं। कोई
भी चीज़ लेनी हो, आपस में सलाह करके ठीक कीमत पर लेनी है। याद रखना है कि संस्था का पैसा संस्था के सदस्यों के लिए आग के समान है इसलिए किसी ने एक पैसा भी
इस्तेमाल करना। आमदनी और खर्च का नियमानुसार ध्यान व हिसाब रखना है।
इस नीति पर शत-प्रतिशत खरा उतरने के लिए अपनी नीयत साफ़ रखनी है व यहाँ के पैसे का दुरुपयोग न हो इसके प्रति सावधान रहना है। इसके प्रति कदापि लापरवाही नहीं
दिखानी। यह भी याद रखना है कि एक भी पैसा पहले आपकी जेब व बाद में पेट में न चला जाए क्योंकि जहाँ यह पैसा मालिक के प्यारों के लिए अमृत
समान है वहीं यह पैसा हमारे और आपके लिए विष के समान है।
सब ठीक इसी तरह से निष्कामता से सुख बाँटने का परोपकार करने हेतु सदा सुमति में बने रह सुख-शांति को प्राप्त होना।

सूचना

इस पावन वसुंधरा पर सेवारत व अन्य सदस्यों ने समभाव से निष्कामतापूर्वक परोपकार का चलन अपनाना है। 'तूं-मैं' का कोई सवाल पैदा नहीं करना। अपना यह कर्त्तव्य निस्वार्थ-भाव से निभाते हुए ध्यान रखना है कि इस संस्था का एक-एक पैसा संस्था की उद्देश्य पूर्त्ति हेतु व मालिक के प्यारों की अमानत है। इसे खर्च करने या जाँच-पड़ताल के बाद योग्य सफेदपोश जरुरतमंदों को राशन, कपड़ा, दवाई आदि किसी भी रूप में बाँटते समय बुद्धिमत्ता व समभाव से काम लेना है ताकि भूलकर भी अमानत में ख्यानत न हो जाए क्योंकि वह ईश्वर हर समय हमें देख रहे हैं। कोई भी चीज़ लेनी हो आपस में सलाह करके ठीक कीमत पर लेनी है। याद रखना है कि संस्था का पैसा संस्था के सदस्यों के लिए आग के समान है इसलिए किसी ने एक पैसा भी अपने लिए नहीं इस्तेमाल करना। आमदनी और खर्चे का नियमानुसार ध्यान व हिसाब रखना है।

इस नीति पर शत्-प्रतिशत् खरा उतरने के लिए अपनी नीयत साफ़ रखनी है व यहाँ के पैसे का दुरुपयोग न हो इसके प्रति सावधान रहना है। इसके प्रति कदापि लापरवाही नहीं दिखानी। यह भी याद रखना है कि एक भी पैसा पहले आपकी जेब व बाद में पेट में न चला जाए क्योंकि जहाँ यह पैसा मालिक के प्यारों के लिए अमृत समान है वहीं यह पैसा हमारे और आपके लिए विष के समान है।

सब ठीक इसी तरह से निष्कामता से सुख बाँटने का परोपकार करने हेतु सदा सुमति में बने रह सुख-शांति को प्राप्त होना।

ध्यान-कक्ष अर्थात् समभाव-समदृष्टि के स्कूल को देखने के लिए निर्धारित दिन व समय

ग्रीष्मकाल में (01अप्रैल से 30 सितम्बर तक) : प्रातः 10 बजे से सायं 5:00 बजे तक।

शीतकाल में (01अक्तूबर से 31 मार्च तक) : प्रातः 11 बजे से सायं 4:00 बजे तक।

प्रत्येक सोमवार साप्ताहिक अवकाश रहेगा।

अंततः हमारा आप सब से विनम्र निवेदन है कि निष्कामतापूर्वक ट्रस्ट द्वारा आद् श्रेष्ठतम संस्कृति को पुनः जीवन्त करने के प्रयासों में निस्वार्थ भावना से व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक रूप से अपना योगदान अवश्य दें और जन-जन तक 'समभाव-समदृष्टि के स्कूल' की सूचना का प्रसार करें।

ध्यान-कक्ष

समभाव-समदृष्टि का स्कूल

ध्यान कक्ष यह ध्यान कक्ष,
सबका साँझा ध्यान कक्ष।
सतयुग की पहचान है यह,
मानवता का स्वाभिमान है यह।।